प्रकाशक
अर्चना - मन्दिर
बीकानेर।

पहला सस्करण २०००
दूसरा संस्करण २०००

मुद्रक
जीतमल प्रोहित
गोपाल प्रिन्टिग प्रेस,
बीकानेर।

प्रवचन

यह नाटक है, इतिहास नहीं। इसलिये ऐतिहासिक पात्रों मे थोडी स्वतन्त्रता से काम लिया गया है और समय की लम्बी चादर को खींच कर छोटा कर लिया गया है। उसे यहाँ बताने की भी आवश्यकता नही। यदि नाटक को देखने-पढने से रसास्वादन हो सके तो मेरा ध्येय पूर्ण हुआ। नाटक की मुख्य भावना की पोषक सामग्री प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है, उसी के लिये इतिहास का भी उपयोग हुआ है। नाटक की विशेष परख सहृदयो की रुचि करेगी।

इस नाटक का नामकरण मित्रवर हरिकृष्णजी 'प्रेमी' का किया हुआ है। धन्यवाद तो उन्हे क्या दे, वैसा करके शिष्टाचार की दीवार बीच में खड़ी करने की आवश्यकता नही, इसलिये उनके स्नेह को यहाँ याद कर लेते है।

बीकानेर
रामनवमी, १९९७

शा० द० सक्सेना

नाटक के पात्र

मीराबाई— मेवाड के युवराज भोजराज की विधवापत्नी, प्रसिद्ध कृष्णभक्त और कवयित्री।

रत्नावली, कचन — मीरा की बचपन की सखियाँ

ऊदाबाई— भोजराज की बहन, मीरा की ननद।

चन्दाबाई— मीरा की मा, मेडता की रानी।

कमला— चन्दाबाई की दासी।

अजबकुँवरि— मीरा की विधवा देवरानी, रत्नसिह की पत्नी।

महाराणी— राणा साँगा की पत्नी।

राव दूदा— मेड़ता के वृद्ध स्वामी, मीरा के पितामह।

रतनसी— मीरा के पिता, मेडता के सरदार।

वीरमसी— मीरा के चाचा।

जयमल— वीरमसी का पुत्र।

साँगा— मेवाड के महाराणा।

भोजराज— मेवाड़ के युवराज।

रत्नसिह— मेवाड के द्वितीय राजकुमार, बाद मे राणा।

विक्रमाजीत— मेवाड के तृतीय राजकुमार, बाद मे राणा।

जीव गोस्वामी— वृन्दावन के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त।

दयाराम पाँडे— चित्तौड़ का ब्राह्मण, मीरा की भक्ति का विरोधी।

तुलसीदास— प्रसिद्ध रामचरित मानस के कर्ता।

पुजारी, ब्राह्मण, सेवक, माली, दासी, सैनिक, पथिक, भील, स्त्री-पुरुष, राजपूत, साधु-सन्त आदि आदि।

साधना - पथ

पहला अंक

दृश्य पहला

[स्थान— मेड़ता के राज-प्रासाद का उपवन । समय— प्रभात
एक स्फटिक-मंच पर हथेली पर चिबुक रक्खे हुए
राजकुमारी मीरा बैठी धीरे-धीरे गा रही है ।
राजकुमारी राजपूती ढंग का घाघरा पहने
और चुनरी ओढ़े है । आभू-
षण हैं, पर थोड़े । माथे
पर शीशफूल है ।]

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई ।
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैल गई आनँद फल होई ।

[दूदा का प्रवेश]

(दूदा का वेश राजपूती है। दाढी और मूछों के बाल
पके हुए हैं। कमर मे तलवार लटक रही है।
माथे पर वैष्णवी-तिलक है।)

दूदा— मीरा, बेटी।

मीरा— (ससभ्रम उठ कर) दादा जी! (अभिवादन करती है।)

दूदा— (सिर पर हाथ रख कर) वत्से। तेरी भाव-भक्ति ने मेड़तिया वश को पवित्र कर दिया है। तू मरुस्थल की मन्दाकिनी है।

मीरा— दादा जी, आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं।

दूदा— नही, तू भक्त-शिरोमणि है।

मीरा— पर मै किसकी शिक्षा का फल हूँ?

दूदा— हृदय की; ओह! ऐसा उच्छ्वसित हृदय! अनेक साधु-महात्माओं की वाणी भी क्या ऐसा अमृत ढाल सकती है?

मीरा— मेरा हृदय भी तो, दादा जी, आप ही की रचना है।

दूदा— ओह, मुझे याद है वह दिन जब उन महात्मा से तू गिरधरलाल की मूर्ति लेने के लिये अड़ गई थी। तेरे उस हठ को मैंने तो बाल-चापल्य ही समझा था। मै क्या जानता था कि ....

[एकाएक रतनसी का प्रवेश]

(रतनसी राजपूत योधा के वेश में है। चेहरे से तेज और शौर्य झलक रहा है। मूँछे तनी हैं।)

रतनसी— उसी का आज यह परिणाम है।

(मीरा सिर नीचा किए चुप खड़ी रहती है। केवल थोडी सी मुड जाती है।)

दूदा— (रतनसी की तरफ जरा मुड कर) तो कुछ बुरा है?

रतनसी— बुरा तो कुछ नही है, पिता जी, यदि समय और अवस्था का भी ध्यान रक्खा जाये।

दूदा— ये प्रतिबंध साधारण लोगों के लिए है।

रतनसी— और हम लोग भी असाधारण नही हैं।

दूदा— किन्तु मीरा है। रतन, तुम अभी तक उसे नहीं समझ सके। उपवन के द्रुम-दल कोकिल की वाणी का मर्म समझते है। वसन्त के प्रथम प्रभात के पुष्प-गुच्छ इसका प्रमाण हैं, किन्तु मनुष्य······

रतनसी— पिता जी, हम लोग संसारी प्राणी हैं। अपने आँगन मे हम आकाश-कुसुमों की वर्षा नहीं चाहते, ऐसे फूलों को चाहते है, जो सचमुच उसे सुवासित कर सकें।

दूदा— तो मीरा के प्रति तुम्हारी क्या धारणा है?

रतनसी— यही कि इसे अत्यधिक भावुक बना दिया गया है।

दूदा— तुम क्या चाहते हो ?

रतनसी— मै चाहता हूँ यह कविता का छन्द न बने, सीधी-सादी गद्य की भाषा रहे। एक क्षत्रिय-कुमारी की तरह लोक-व्यापार मे दक्ष हो।

दूदा— और ?

रतनसी— भक्ति बुरी नहीं, किन्तु, संसार के प्रति क्या हमारा कोई कर्तव्य ही नही ?

दूदा— पर मेरा विश्वास है, हमारी मीरा किसी कर्तव्य से विमुख नहीं है। (मीरा से) क्यों बेटी ?

(मीरा के चेहरे पर गहरी नजर डालता है। परन्तु मीरा चुप रहती है।)

रतनसी— यही उचित है।

मीरा— (कातर कण्ठ से) पिता जी, मेरी अशिष्टताओं को क्षमा कीजिये। मेरे गिरधरलाल.....

रतनसी— हाँ, गिरधरलाल तेरे हैं और उनकी यह दुनियाँ तेरी नही है क्या ? बच्ची, संसार का प्राण कल्पना और कवित्व नहीं, संघर्ष है। मै चाहता हूँ भावुकता के स्थान पर वास्तविकता की किरण से तेरा हृदय अभिषिक्त हो।

दूदा— होगा, पर ....

रतनसी— पिता जी, आपने मीरा को विराग की दीक्षा दी है, आप ही उसे ससार-योग्य बनाइये। यही मेरी प्रार्थना है।

दूदा— तुम निश्चिन्त रहो। अवस्था ही योग्यता की एक मात्र कसौटी नहीं।

रतनसी-- आप जानें।

[प्रस्थान

(थोडी देर तक निस्तब्धता रहती है। मीरा दूदा के समीप कुछ तिरछी होकर खड़ी रहती है)

दूदा— बेटी, मैंने ठीक ही कहा है न ?

मीरा— दादा जी, आपकी छाया-तले तो मै और भी कुछ बन सकती हूँ।

दूदा— मै आशीर्वाद देता हूँ, तू अविचल भक्ति की अधिकारिणी हो।

(मीरा घुटनों के बल झुक जाती है। दूदा उसके सिर पर हाथ रखता है।)

[हाथ मे नगी तलवार लिये जयमल का प्रवेश।]

जयमल— दादा जी, मुझे भी कुछ चाहिए !

(घुटना मोड़ कर तलवार के सहारे झुक जाता है।)

दूदा— जयमल। वत्स, जा तेरा यह वीरवेश अमर यश से विश्व को भर दे।

जयमल-- नही।

दूदा— क्यों?

जयमल— मुझे बहन मीरा के पीछे चलने का आशीर्वाद चाहिए।

दूदा-- अच्छा, यह भी तुझे प्राप्त हो। भक्ति और शौर्य दोनों के लिए यह मेड़तिया कुल विश्व मे एक उदाहरण छोड़ जाय। तुम्हारे वृद्ध पितामह का तुम दोनों के लिए यही आशीर्वाद है।

जयमल— पूज्यवर, आज मै कृतकृत्य हुआ।

मीरा— मैं धन्य हुई।

दूदा— वत्स, जयमल। चलो। सभवत: यात्रा की तैयारी हो चुकी होगी। (मीरा से) बेटी, अपने गिरधरलाल के यश-सगीत से अन्तपुर और उपवन को चिर-मुखरित करती रहे।

[आगे आगे दूदा और पीछे जयमल का प्रस्थान]

मीरा— ओह! दादा जी, तुम्हारा हृदय कितना सुन्दर है। एक वीरवेश मे कितनी कोमलता छिपी है। (घूम कर उपवन के लता-गुल्म और कुञ्जों की ओर देखती है।) अहा! लता-गुल्म कैसे सुन्दर है? वृन्दावन की याद दिलाते हैं—

(गाती है)

आली, मोहि लगै वृन्दावन नीको।

कुञ्जन-कुञ्जन फिरति राधिका शब्द सुनत मुरली को।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको।

(भावावेश-नाट्य करती है)

[दृश्य परिवर्तन]

❀❀

दृश्य दूसरा

[**स्थान**— मेडते मे रतनसी का आवास। **समय— सन्ध्या।**

रानी चन्दाबाई पूजार्थ मन्दिर जाने को तैयार है।

सोने के थाल में पूजन-सामग्री सजी हुई रक्खी

है। एक पात्र मे गङ्गाजल धरा है।]

[कमला का प्रवेश

कमला— महारानी जी।

चन्दाबाई— आरती का समय हो गया? मैं तैयार हूँ।

कमला— हाँ महारानी जी, समय हो गया। पधारिये, किन्तु ....

चन्दाबाई— किन्तु क्या?

कमला— महाराज आज शीघ्र पधारेंगे।

चन्दाबाई— आज तो महाराज को सेना का निरीक्षण करना था। आज वे शीघ्र कैसे पधारेंगे?

कमला---- सैन्य-निरीक्षण राजकुमार जयमल करेंगे।

चन्दाबाई---'और उत्सव की तैयारी'?

कमला--- महाराज (वीरमसी) ने सारा भार अपने ऊपर ले लिया है।

चन्दाबाई--- यों,--- अच्छा, चलो हम लोग चलें।

कमला--- जो आज्ञा।

[प्रस्थान

(पीछे-पीछे कमला का प्रस्थान

[दूसरी ओर से रतनसी का प्रवेश। आकर चुपचाप विचार-मग्न सा इधर-उधर घूमने लगता है। कभी कभी बीच बीच मे कमर में लटकती हुई तलवार को दबाता जाता है।]

[नेपथ्य मे शख और घट-ध्वनि

रतनसी--- (चौंक कर) रानी चतुर्भुज भगवान की सेवा मे पधारी होंगी।

एक दासी--- (प्रवेश करके) हाँ, महाराज। आसन तैयार है, चल कर विराजिये।

रतनसी--- तुम जाओ। आसन की आवश्यकता नही।

दासी--- (हाथ जोड़ कर) आज्ञा महाराज।

[दासी का प्रस्थान

[नेपथ्य में शख और घट-ध्वनि

रतनसी-- (सोचता हुआ) यह उपासना और पूजा एकान्त निरर्थक भी नही है। इससे अन्तःकरण में शान्ति और बल, मन मे विश्वास और दृढ़ता उत्पन्न होती है। गद्गद् और प्रभावित हृदय भावों के मधु-रस से सरस हो जाते हैं। किन्तु यह रस उन्हीं शुष्क और जर्जरित परिणत-वयस प्राणियों के लिये है जिन्होंने जीवन-सघर्ष मे योद्धा का कर्तव्य पूर्ण करने में अपनी शान्ति को खो दिया है। भला मीरा, कोमल सुकुमार कल की मीरा ....

(नेपथ्य में गीत)

आली, मोहि लग वृन्दावन नीको।

कुञ्जन कुञ्जन फिरति राधिका शब्द सुनत मुरली को।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको।

रतनसी— (सुन कर) लो सुनो, देखो, कैसी तन्मयता है! परमहंसों जैसा भावावेश! मीरा, बेटी! तेरा यह बचपन, तेरी यह भोली अवस्था, कभी नहीं— कभी नहीं ....

[सहसा चन्दाबाई का प्रवेश]

चन्दाबाई-- (साश्चर्य) महाराज!

रतनसी— (चौंक कर) महारानी!

चन्दाबाई— महाराज, इस प्रकार क्यों खड़े हैं? चलिये, आसन पर विराजिये।

रतनसी— हाँ, चलूँगा।

चन्दाबाई— महाराज को बडा कष्ट हुआ।

रतनसी— महारानी को मन्दिर मे जाकर पूजा करने और आरती मे सम्मिलित होने मे कष्ट नहीं हुआ और मुझे यहाँ खड़े-खडे भगवान का नाम सुनने और थोड़ा ध्यान कर लेने मे कष्ट होने लगा, क्यों रानी जी ?

चन्दाबाई— (हँस कर) ओहो, तब तो महाराज आरती मे सम्मिलित हो रहे थे।

रतनसी— इस तरह ही आरती मे सम्मिलित हुआ जाता है क्या ? (नेपथ्य की ओर उँगली दिखा कर) मीरा गिरधर-लाल के भजन मे रत थी, मै उसी का प्रार्थना-सगीत सुन रहा था। (हास्य)

चन्दाबाई— महाराज ठीक कर रहे थे। अब शायद महाराज को अनुभव हो रहा होगा कि मेरा तकाजा उचित था।

[हाथ पकड़ कर लेजा कर रतनसी को आसन पर बिठा देती है।]

रतनसी— इससे क्या तकाज़े की अवस्था के पैदा करने का दोष महारानी मेरे सिर पर डाल रही है।

चन्दाबाई— यह क्यों करूंगी।

रतनसी— तो ?

चन्द्राबाई— क्या मै आपके सामने अनेक बार यह स्वीकार नहीं कर चुकी हूँ, कि इसका सारा दोष मेरे ही मत्थे है। मै नही जानती थी कि अबोध मीरा इतनी भावुक है। वह हँसी की बात पर ऐसा आचरण करने लगेगी; पत्थर के ठाकुर जी को अपना स्वामी कहेगी।

रतनसी— यही तो।

चन्द्राबाई— मै अब पछताती हूँ, महाराज! उसका भावावेश, उसकी भक्ति और उसकी तन्मयता देख कर कभी-कभी मुझे डर होने लगता है। इसी से कहती हूँ, महाराज जल्दी कीजिये।

रतनसी— मै स्वय निश्चिन्त नही बैठा हूँ।

चन्द्राबाई— प्रमाण? बिना प्रमाण मै कैसे मानूँ?

रतनसी— आज मालूम पड़ा कि अपनी बात पर विश्वास कराने के लिये मुझे तुम्हारे सामने भी प्रमाण की आवश्यकता होगी?

चन्द्राबाई— महाराज मै माता हूँ और अबला भी। अन्त'पुरवासिनी होने के कारण हम लोगों का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित रहता है। पुरुषों का कार्य-क्षेत्र विशाल होता है और इसी से हम प्रमाणों-द्वारा इस बात का पता लगाना चाहती है कि कार्य की व्यवस्था मे हमारी प्रेरणा पड़ी तो नही रह गई।

रतनसी— पर अभी तक बात के पूर्णतया प्रकट करने का समय नहीं है। अभी तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमारी मीरा निकट भविष्य मे राजरानी होगी।

चन्दाबाई— (प्रसन्न मुद्रा से) महाराज ने मेरे मन में और अधिक उत्कण्ठा भर दी है।

रतनसी— आशा है, वह उत्कण्ठा शीघ्र ही आनन्द से अभिषिक्त होगी।

चन्दाबाई— महाराज मुझ से अवश्य प्रतीक्षा करायेंगे?

रतनसी— कुछ हर्ज है?

चन्दाबाई— मेरा हृदय अधीर हो चुका है, महाराज। उससे प्रतीक्षा कराना उस के लिए महान दण्ड होगा।

रतनसी— ऐसा है, तो मै बताऊँगा, किन्तु जब तक निश्चय की मुहर न लगे तब तक उसे गुप्त ही रखना होगा।

(चन्दाबाई के कन्धे पर झुक कर कुछ कहता है।)

चन्दाबाई— (हर्ष-गद्‌गद्‌ होकर) महाराज, इसी सम्बन्ध की बात मेरे मन मे आती थी। (धीरे से) युवराज, भोजराज और मीरा, मणि-कांचन सयोग, महाराज।

रतनसी— बस, अभी अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

चन्दाबाई— मुझे ध्यान है, महाराज।

[कमला का प्रवेश।

कमला— (हाथ जोड कर) सेनापति वीरभानु .....

रतनसी— मन्त्रणा-गृह मे परामर्श करूँगा। मै वही चलता हूँ।

[एक ओर से दासी का और दूसरी ओर से रतनसी का प्रस्थान।

चन्दाबाई— (घुटनों के बल बैठ जाती है और आकाश की ओर आँचल पसारती है) मेरी चिर-दिन की साध पूरी हो, भगवन्।

[मीरा का प्रवेश।

मीरा— माता जी!

चन्दाबाई— (चौंककर) मीरा, मीरा, प्यारी मीरा! आजा बेटी, मेरे पास। तुझे एक बार हृदय से लगा लूँ।

(मीरा को पकड कर बारम्बार हृदय से लगाती है। मीरा किंकर्तव्यविमूढता का भाव-नाट्य करती है।)

[दृश्य परिवर्तन]

दृश्य तीसरा

[स्थान— मेवाड़ का राजमहल। समय— प्रातःकाल। युवराज भोजराज और राजकुमार रतनसिंह तथा राजकुमार विक्रमाजीतसिंह प्रवेश करते हैं। सभी राजपूत-योद्धाओं के वेश मे हैं।]

भोजराज— अब क्या देर है ?

रतनसिंह— कुछ नहीं युवराज। केवल आपकी आज्ञा की देर है।

भोजराज— मेरी आज्ञा की ? (विक्रमाजीत की ओर देखता है।)

विक्रमाजीत— तो हम लोग चलें ?

भोजराज— हाँ-हाँ।

(सब चलने को होते हैं।)

रतनसिंह— पिता जी आ रहे हैं।

[महाराणा सांगा का प्रवेश।

(तीनों पुत्र बारी-बारी से अभिवादन करते हैं। महाराणा सबको आशीर्वाद देते हैं।)

महाराणा— राजपूतों की वीरता अब शिकार में न लग कर राजनीति में लगनी चाहिए।

भोजराज— तो हम शिकार को न जायँ ?

राणा— न जाओ। जब तलवार को जंग खा रही हो, जब शान्ति चारों तरफ से घेर कर वीरता को कुण्ठित बना रही हो, तभी शिकार को मनोविनोद का साधन बनाना चाहिए। वीरता का मुख्य व्यवसाय शिकार नहीं है।

भोजराज— तो हम लोगों को क्या आज्ञा है ?

राणा— एक बार दिल्ली का सिंहासन फिर डोलने लगा है। हमें अवसर से लाभ उठाना चाहिए।

रतनसिंह—हम लोग तैयार हैं।

विक्रमाजीतसिंह— हम तैयार हैं।

राणा— तो जाओ, राजपूतों की बिखरी हुई शक्ति को एकत्र करो।

(दोनो को एक-एक पत्र देता है।)

भोज०— लेकिन लोदी सुलतान तो मुगलों से लड़ने को तैयार हो रहे हे। लोहा लोहे से कट रहा हो, तो हमे बीच मे क्यों पडना चाहिये ?

राणा— पर हम नहीं जानते कि ऊँट किस करवट बैठेगा। हमे तो अपनी पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। इस संघर्ष मे कोई भी विजेता हो, विजय तो उसे महँगी ही पडेगी।

भोजराज— दोनों जर्जर हो जायेंगे।

राणा— हाँ, उस स्थिति से हम लाभ उठायेंगे। अगर हम न उठायेंगे तो हमारी भूल होगी और इतिहास सदा हमारे नाम को अदूरदर्शियों के साथ याद करेगा।

भोज०— तो हमे अपनी शक्तियों के सचय मे लग जाना चाहिए।

राणा— अभी-अभी। देखते नहीं हो भारत के क्षितिज पर तूफान के बादल उमड़ रहे हैं। उस के हृदय का रक्त-प्रवाह शिथिल हो रहा है। हमारे सतर्क रहने की आवश्यकता है।

भोज०— तो आज्ञा दीजिए पिता जी हम लोग जायँ।

रतन०— मैं भी जाऊँ ?

विक्रमा०— और मैं भी पिता जी ?

राणा— हाँ, जाओ। सारे देश मे आग फूँक दो। मुर्दों को जिला दो। सोते हुओं को जगा दो। घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर सब की आँखों मे भविष्य के सुनहले सपने भर दो। देश, जाति, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के सेनानी का आह्वान सब को सुना दो।

तीनों राजकुमार— यही होगा, पिता जी। विदा।

[राजकुमारों का प्रस्थान।

राणा— गये; मेवाड़ के राजकुमार चारण बन कर गये। आज भाग्य-निर्णायक परिस्थिति हमारे सामने है। इस प्रदोप वेला के पीछे पता नहीं, उषा है या सन्ध्या; किन्तु जो कुछ भी है, वह राणा साँगा को, सीसोदिया वंश को, राजपूत वीरता को अजर अमर प्रकाश में रँग जाने वाली है। आज हमारे आह्वान से कण-कण जाग उठेगा। हमारी आँखों से

चुराये हुए सारे स्वप्न आज अपने पूरे आलोक से जगमगा उठे हैं।

[प्रस्थान

[दृश्य परिवर्तन]

❀❀

दृश्य चौथा

[स्थान—मेड़ता का राजभवन। समय—आधी रात।
राव दूदा मृत्यु-शैया पर पड़े हैं। पास राजकुमारी
मीरा बैठी है। उसका सिर रोगी की शैया की बाजू
पर रक्खा है। वह आँखो और मुँह का
भाव कुछ छिपा सी रही है।]

दूदा—मेरी तलवार खोल दो। जिन्दगी भर खून से हाथ रंगे है। अब थोड़ी देर गंगा-स्नान करूंगा। चन्दन लाओ, अक्षत लाओ। पत्र पुष्प—

मीरा—(हाथ से रोगी का कन्धा हिलाती है।) दादा जी, बियत कैसी है ? पिता जी को बुलाऊँ ?

दूदा—(आँखे खोल कर) मीरा।

मीरा—दादा जी।

दूदा—वेटी, मै जा रहा हूँ।

मीरा—(साश्रु कण्ठ से) कहाँ जा रहे हैं ?

दूदा— मीरा!

मीरा— दादा जी!

दूदा— मीरा बेटी, तुम कहाँ हो?

मीरा— मै यहीं तो खडी हूँ। देखिये।

दूदा— मुझे कुछ नहीं दिखता है, मीरा।

मीरा— अब देखिये। (रोगी के ऊपर झुकती है।)

दूदा— दीपक तो जला दो। ओह, कितना अन्धेरा है।

मीरा— दीपक तो जल रहा है, दादा जी।

दूदा— अच्छा, अपना हाथ बढ़ाओ।

मीरा— लीजिये। (हाथ बढा कर रोगी के हाथ मे देती है।)

दूदा— मीरा बेटी, भगवान का नाम सुनाओ। अब बहुत थोडी देर है।

(मीरा गाती है)

पायो जी मैने नाम रतन-धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा करि अपनायो।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग मे सभी गँवायो।
खरचै नहि कोइ चोर न लेवें, दिन दिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो।

दूदा— ओह, कितना शान्त, कितना शीतल, कितना मधुर! गाओ, बेटी, एक पद और। फिर यह गीत कहाँ·····।

मीरा— दादा जी, आप अच्छे हैं। आप अच्छे हो जॉयगे। मै गाती हूँ। आप सुनें। इस भजन से आपको बहुत शान्ति मिलेगी।

दूदा — गाओ, बेटी! कमरे मे दीपक भी जला लो। मै एक बार तेरा मुँह भी देखता जाऊँ।

मीरा — दीपक तो आपके सामने ही जल रहा है। आप उसे देखते नहीं?

दूदा — नहीं, बिलकुल नहीं।— ओफ।

मीरा — दादा जी, आप भजन सुनिय। आपको बहुत कष्ट हो रहा है।

दूदा — सुनाओ।

मीरा — (गाती है)

चलो रे मन गङ्गा-जमुना तीर।
गङ्गा-जमुना निरमल पानी, सीतल होत शरीर।
बसी बजावत गावत कान्हा, सग लिये बलबीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलकत हीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरन कमल पै सीर।

(भावावेश-नाट्य करती है। दूदा खॉसता है। उसकी ऑखें पथरा जाती हैं। श्वास बन्द हो जाता है। मीरा गाती रहती है। द्वार खुलता है। वीरमसी प्रवेश करता है।)

वीरमसी— पिताजी, पिता जी ! अरे यह क्या ?

[मीरा चोंकती है, और दूदा के शरीर के ऊपर झुकती है ।]

मीरा— दादा जी, हाय । दादाजी ।

[नेपथ्य में कुहराम मचता है ।

(दीपक धीरे-धीरे बुझ जाता है)

(दृश्य परिवर्तन)

❀❀

दृश्य पाँचवाँ

[स्थान— मेडता का राजभवन । समय— चाँदनी रात का प्रथम पहर । मन्दिर के उपवन में मीरा गा रही है । कभी इस कुञ्ज के नीचे जाती है, कभी उस कुञ्ज के ।]

(गीत)

आली, मोहि लगे वृन्दावन नीको ।
कुञ्जन कुञ्जन फिरति राधिका, शब्द सुनत मुरली को ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको ।

(राजकुमार भोजराज का प्रवेश, स्तब्ध खड़ा रहता है । अचानक मीरा का ध्यान उधर जाता है । भावावेश में वह भोजराज को कृष्ण समझ लेती है । एक दृष्टि देख कर भाव-मग्न हो जाती है और फिर गाने लगती है ।)

(गीत)

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल

मोहनी मूरत सॉवरी सूरत नैना बने विशाल।

बसो मोरे० ॥

भोजराज— आज मन्दिर आना सार्थक हुआ। साक्षात प्रेम की देवी के दर्शन हो गये। जैसा सुना था मीरा को उससे भी अधिक पाया। अनुपम रूप, अपूर्व छबि, मधुर कठ, मोहक हृदय! धन्य मेड़ता। धन्य राठौर वश।

[धीरे धीरे पीछे हटते हुए प्रस्थान। मीरा ऑख खोल कर देखती है। किसी को न पाकर आगे बढ कर खोजती है।]

मीरा—(कुञ्ज के पास जाकर) नन्दलाल, तुम मुझे धोखा नही दे सकते। अपनी राधा को तुम छल नही सकते। मै तुम्हे पहचानती हूॅ। जन्मजन्मान्तर की लगन को तुम इस प्रकार तोड़ कर भाग नहीं सकते (दूसरे कुञ्ज के पास जाकर) भला, जिसे सदा ऑखों मे, हृदय में और रोम-रोम में प्रत्यक्ष कर के देखती हूॅ, उसे देखने में भ्रम कैसे हो सकता है? अभी अभी, दो क्षण पहले— वही रूप, वही मूर्ति, वही चितवन।— पर मै तुम्हे क्यों खोजूॅ? मेरे हृदय देवता, तुम्ही मुझे खोजते फिरोगे। 'मै तुम्हारी प्रतीक्षा करूॅगी। तुम्हें आना ही पड़ेगा।

[पास की स्फटिक शिला पर बैठ जाती है। हवा का झोंका आता है और पास के वृक्ष से फूलों की एक बौछार मीरा पर होती है। कचन और रत्नावली का खिलखिलाते हुए प्रवेश।]

कचन--- राजकुमारी को आज निर्णय करना होगा।

रत्नावली--- स्वीकार है।

मीरा--- क्या बात है?

कचन--- यह रत्ना कहती है।

रत्ना--- हाँ, मै कहती हूँ।

मीरा--- क्या कहती हो?

रत्ना--- यही कि मेवाड के युवराज के आने का कोई बडा कारण है।

कचन--- बस यही कहा था?

रत्ना--- तो तुम्ही कह दो, क्या कहा था।

कचन--- राजकुमारी, रत्ना कहती थी कि केवल राज्य के काम के लिये युवराज को आने की आवश्यकता न थी।

मीरा--- ठीक कहती है। यह काम तो कोई दूत भी कर सकता था।

रत्ना--- राजकुमारी ठीक कहती है।

कंचन--- (मुस्कराती हुई) और यह कहती है कि युवराज हमारी ...

मीरा— हमारी क्या ? कहो न।

कचन— हमारी राजकुमारी को देखने के लिये आये हैं।

मीरा— (हँस कर) बस।

रत्ना— और यह कहती है, कि राजकुमारी को हरण करने के लिए आये है।

मीरा— पर यह झूठ कहती है।

रत्ना— बिलकुल झूठ। मै तो इसे बार बार कहती हूँ कि हमारी राजकुमारी किसी राजकुमार के लिए नही है। वे गिरधर गोपाल की हो चुकी है।

मीरा— सच है, मै गिरधर गोपाल की और वे मेरे। (विचार-मग्न हो जाती है) परन्तु मै दादा जी की अन्तिम इच्छा से बंधी हू।

कचन— हम तो नहीं जानती दादा जी की क्या इच्छा थी।

मीरा— कि मैं इस विषय मे पिता जी की इच्छा के प्रति आत्म-समर्पण कर दूँ।

कचन— किस विषय मे ?

मीरा— इसी सासारिक बंधन— विवाह के विषय मे।

रत्ना— आपने क्या निश्चय किया ?

मीरा— मै दादा जी की आत्मा को दुखा न सकूँगी। मै बिन्दु में सिधु का दर्शन करूँगी। मै विवाह मे उस परम सबंध को खोजूंगी।

[मन्दिर मे ठाकुरजी के शयन का घंटा बजता है। सब उठ कर मन्दिर की ओर प्रस्थान करती हैं।]

[दृश्य परिवर्तन]

❀❀

दृश्य छठा

[स्थान-- चित्तौड के महल का उपवन। समय— रात
राणा सॉगा चिन्तातुर इधर से उधर घूम रहे हैं।
उन के भारी पैरों की थाप से कभी-कभी कोई पक्षी
पेड की डाल पर पंख फड़फडाता है। बाकी शांति है।]

राणा — काबुल और दिल्ली का मार्ग बन्द हो गया क्या? कोई समाचार नहीं।

[सेवक आकर दूत के आने का समाचार देता है।

सेवक— उसे ठहरने को कहू, महाराज?

राणा— उसे यहीं ले आओ।

[सेवक का प्रस्थान, फिर दूत को पहुचा कर वापिस जाना।

दूत— (अभिवादन करके **) महाराज, मुगलों को सिन्धु पार करते छोड़ आया हू।**

राणा— तो दिल्ली और काबुल ... (सोचता है)

दूत— सुलतान पानीपत मे बाबर की प्रतीक्षा कर रहा है।

राणा— यह ठीक है। यह शुभ है। कोई और समाचार?

दूत— नही, महाराज।

राणा— जाओ, विश्राम करो।

[अभिवादन करके दूत का प्रस्थान।

मुझे दीख रहा है निकट भविष्य का वह उज्ज्वल आलोक। उसमे प्रतिबिंबित है दिल्ली और काबुल का सघर्ष। कितना स्पष्ट है मेरा सोचा हुआ परिणाम। इतिहास जिसे कल लिखेगा उसे मै आज देख रहा हूँ।··· अगर सुलतान सिन्धु के घाटों की रक्षा करता, परन्तु वह क्यों करता? भाग्य के लेख तो लिखे जा चुके है। कितने उज्ज्वल है ये लेख।

[जल्दी जल्दी टहलने लगता है।
महारानी का प्रवेश]

महाराणी— राज और राजनीति के लिये दिन के पहर काफी नहीं हैं क्या?

राणा— क्यों नही हैं, महाराणी, किन्तु दिन का प्रकाश इतना प्रखर होता है कि जटिलताएँ उसमे आलोकित नहीं हो पाती।

महाराणी— रात के अन्धेरे मे होती होंगी?

राणा— (हँस कर) खूब। आओ, तुम्हें भी दिखाऊँ। रात के घन-अन्धकार मे वे कैसे जगमग जगमग करती हैं?

महाराणी— (पास जाकर) दिखाइये।

राणा— (दाहिने हाथ से महारानी का सिर अन्धकार की ओर कर के इशारा करता है) देख रही हो ?

महाराणी— क्या ?

राणा— सामने कुछ देख रही हो ?

महाराणी— कुछ नहीं ।

राणा— इतना स्पष्ट और तुम्हे नही दिखता ? आश्चर्य है। पानीपत का वह मैदान । काबुल और दिल्ली का वह सैन्य-प्रवाह। अरे, तुम्हे कुछ नहीं दिखता ?

महाराणी— यहाँ कुछ नहीं है, महाराणा। आपके मस्तिष्क में दिल्ली और काबुल के विचार रहते हैं । आप अपने उन्हीं विचारों की छाया को अन्धकार में खोज रहे हैं ।

राणा— तुम्हें ये विचार नहीं भाते ?

महाराणी— मुझे दूसरी चिन्ताएँ क्या कम है, महाराज।

राणा— मेवाड़ की महाराणी को देश की चिन्ता से भी बड़ी कोई चिन्ता है ?

महाराणी— है ।

राणा— वह क्या ?

महाराणी— मै माँ हू, महाराणा ।

राणा— महाराणी तो देश की माता होती ही हे ।

महाराणी — देश की माता— यथार्थ । किन्तु मेरी साधना का क्षेत्र अभी इतना विशाल नहीं हो पाया है, महाराणा ! मै

हर समय इस विश्व-भावना में लीन नहीं रह पाती हूँ। आप धन्य है, जो इस प्रकार अपने अस्तित्व को विराट में एकाकार किये रहते हैं।

राणा— महाराणी को इस साधना मे सफल होना चाहिये।

महाराणी— अवश्य होऊँगी। आपका सहवास है तो अवश्य होऊँगी, किन्तु अभी मैं व्यामोह में पड़ी हूँ।

राणा-- मोह को तोड़ डालो।

महाराणी— तोड़ डालूँगी।

राणा— कब ?

महाराणी— जब तोड सकूँगी।

राणा— कब तोड़ सकोगी ?

महाराणी— घर मे बहू बुला कर और ऊदा को ससुराल भेज कर।

राणा— बस, इतना ही ?

महाराणी— बस। नारी की दुनिया स्नेह और मोह के ताने बाने से बनी है।

राणा-- अपना ताना-बाना विस्तृत करो, महाराणी।

[नेपथ्य मे जय जयकार और कोलाहल होता है। महाराणी और राणा चौंकते हैं और जाते हैं।]

[दृश्य परिवर्तन]

❀❀

राणा— (दाहिने हाथ से महारानी का सिर अन्धकार की ओर कर के इशारा करता है) देख रही हो ?

महाराणी— क्या ?

राणा— सामने कुछ देख रही हो ?

महाराणी— कुछ नहीं।

राणा— इतना स्पष्ट और तुम्हे नही दिखता ? आश्चर्य है। पानीपत का वह मैदान। काबुल और दिल्ली का वह सैन्य-प्रवाह। अरे, तुम्हे कुछ नहीं दिखता ?

महाराणी— यहाँ कुछ नहीं है, महाराणा। आपके मस्तिष्क में दिल्ली और काबुल के विचार रहते हैं। आप अपने उन्हीं विचारों की छाया को अन्धकार में खोज रहे हैं।

राणा— तुम्हे ये विचार नहीं आते ?

महाराणी— मुझे दूसरी चिन्ताएँ क्या कम हैं, महाराज।

राणा— मेवाड़ की महाराणी को देश की चिन्ता से भी बड़ी कोई चिन्ता है ?

महाराणी— है।

राणा— वह क्या ?

महाराणी— मैं माँ हूं, महाराणा।

राणा— महाराणी तो देश की माता होती ही है।

महाराणी — देश की माता— यथार्थ। किन्तु मेरी साधना का क्षेत्र अभी इतना विशाल नहीं हो पाया है, महाराणा! मैं

हर समय इस विश्व-भावना में लीन नहीं रह पाती हूँ। आप धन्य है, जो इस प्रकार अपने अस्तित्व को विराट में एकाकार किये रहते है।

राणा— महाराणी को इस साधना मे सफल होना चाहिये।

महाराणी— अवश्य होऊँगी। आपका सहवास है तो अवश्य होऊँगी, किन्तु अभी मै व्यामोह में पड़ी हूँ।

राणा— मोह को तोड़ डालो।

महाराणी— तोड़ डालूँगी।

राणा— कब?

महाराणी— जब तोड सकूँगी।

राणा— कब तोड़ सकोगी?

महाराणी— घर मे वहू बुला कर और ऊदा को ससुराल भेज कर।

राणा— बस, इतना ही?

महाराणी— बस। नारी की दुनिया स्नेह और मोह के ताने बाने से बनी है।

राणा— अपना ताना-बाना विस्तृत करो, महाराणी।

[नेपथ्य मे जय जयकार और कोलाहल होता है। महाराणी और राणा चौंकते हैं और जाते हैं।]

[दृश्य परिवर्तन]

❀❀

जयमल— चाचा जी, मैं चलूँ ?

रतनसी— चलो।

[जयमल का प्रस्थान

चदाबाई— महाराज, मीरा को देखा।

रतनसी— देखा। (जिधर मीरा गई थी उधर देखता है।)

चदाबाई— जल्दी करिये, महाराज। मुझे मीरा को देख कर भय लगता है।

रतनसी— अभी पुरोहित जी को बुलाओ। नारियल का मुहूर्त करो। मैं अभी आता हूँ।

[रतनसी का प्रस्थान और दासी का प्रवेश।

चदाबाई— कमला, कमला।

कमला— महाराणी जी।

चदाबाई— पुरोहित जी को बुलाओ।

कमला— जो आज्ञा। (जाने को होती है)

चंदाबाई— ठहरो, सुनो।

कमला— कहिये, महाराणी जी।

चदाबाई— पुरोहित जी को जल्दी बुलाओ। बाई जी की सगाई का मुहूर्त.......

कमला— (उल्लसित होकर) बाई जी की सगाई।

चदाबाई— हॉ री, जल्दी जा।

कमला— जा रही हूँ।

[कमला का शीघ्रता से प्रस्थान

चंदाबाई— मेरी मीरा, राजरानी होगी। मेवाड की राज-रानी। सीसोदिया कुल की महाराणी। उसके माथे पर राजमुकुट सोहेगा। महाराणा, युवराज के लिये नारियल स्वीकार करेंगे? भावी युद्ध मे मेरे स्वामी महाराणा के सहयोगी होंगे। यह मधुर सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जायगा। रक्त-धारा इस सम्बन्ध को अधिक गहरा कर देगी। मेरी मीरा, फूल सी मीरा, प्यारी प्यारी मीरा— कैसी भोली भाली है। ससार की छाया अभी उसके हृदय पर नहीं पड़ी। प्रेम,— अभी वह प्रेम को नहीं जानती भगवद्भक्ति मे डूबी रहती है। कृष्ण के गुण गाती है। विवाह हो जाने पर, स्वामी से मिलन होने पर, प्रेम की धारा मुड़ कर जब दूसरी ओर बहने लगेगी, तब वह अपना यही भावावेश अपने स्वामी के चरणों मे समर्पित कर देगी। समय उसे समझा देगा, कि नारी के भगवान उसके पति है। गृहस्थी ही उसका आराधना-मन्दिर है। ओह! कितना सुन्दर, कितना मधुर और कितना सुखकर होगा वह क्षण।

[आनन्दाश्रु बहाती है।]

[दृश्य परिवर्तन]

दृश्य आठवाँ

[स्थान— चित्तौड का किला । समय— प्रभात । महाराणा सॉगा अकेले घूम रहे हैं । ठण्डी हवा चल रही है । सामने पहाड़ की काली चोटियो पर बाल-सूर्य की सुनहरी किरणें बिखर रही हैं । नीचे देखने पर दूर तक मैदान ही मैदान नजर आता है । राणा का ध्यान किसी तरफ नहीं है । वे अपने मे ही डूबे हुए चले जा रहे हैं । एकाएक एक ऐसे उभरे हुए पत्थर से टकरा जाने से उनका ध्यान भङ्ग हो जाता है । वे गिरते-गिरते सम्हल जाते हैं ।]

राणा— ठोकर की भाति ही ससार की घटनाऍ मनुष्य को ठहर कर सोचने के लिये वाध्य कर देती है । यदि ऐसा न हो तो आदमी बहता चला जाय । एकबारगी परिणाम के अतल गर्त में जा गिरे । मैंने जो कुछ सोचा था अक्षर-अक्षर वही हुआ । बस, एक ज़रा सी कसर रह गई । पानीपत में दिल्ली का पतन हो गया । सदियों की जमी हुई सत्ता पानी की लकीर की तरह मिट गई । कहॉ गई वह शान, कहॉ गई वह तलवार और कहॉ गया वह अत्याचारी राज-दण्ड ? आज उसका नाम-निशान नही । किन्तु क्या राणा सॉगा के उस स्वप्न का केवल पूर्वार्द्ध ही सत्य होगा ? उत्तरार्द्ध स्वप्न ही रह जायगा ? यह बाबर— तैमूर और चगेज़ का यह वशज— अपने पुरखों

की नीति के विरुद्ध, क्या दिल्ली में जमने की सोच रहा है? यही दिखता है। राणा साँगा को उसके हृदय की एक एक धड़कन का ज्ञान है। वह उसे जमने से पहले ही उखाड़ फेंकेगा। चित्तौड़ के झंडे के नीचे आज सम्पूर्ण राजपूत शक्ति जमा है। आज चुपचाप बैठ रहना भविष्य को भीषण बनाना है। बाबर भी देख लेगा कि केवल दिल्ली को जीत कर देश के स्वामित्व की धारणा मिथ्या है। तो चलूँ—

[लौटता है।

[दृश्य परिवर्तन]

नवाँ दृश्य

[स्थान— चित्तोड़ का राज-भवन। समय— रात्रि। युवराज भोजराज विचारलीन बैठे हैं।]

भोजराज— मेड़ते से सहायता के आश्वासन के साथ साथ मैं एक व्यथा भी मोल ले आया हूँ। मैं उस समय अनुभव नहीं कर सका। मार्ग मे भी हृदय की उपेक्षा करता हुआ चला आया, परन्तु अब देख रहा हूँ कि ज्यों ज्यों मेड़ता दूर होता गया है त्यों त्यों हृदय की व्याकुलता बढ़ गई है और अब तो असह्य हो उठी है। मेवाड़ के युवराज को प्रेम मे इस प्रकार न घुलना चाहिये और तब जब प्रेम-पात्री को उसके प्रेम का भान भी न हो।

[उठ कर टहलने लगता है। सेवक का प्रवेश

सेवक— घोड़ा तैयार है, युवराज।

भोज— जाओ, उसे लौटा दो।

सेवक— जो आज्ञा।

[अभिवादन करके प्रस्थान

भोज०— मै इतना दुखी क्यों हू? कर्तव्य से इतनी दूर भटक जाने से ही मन की यह दशा हुई है। मैं अपने को दृढ़ बनाऊँगा। उस रूप को भूल जाऊँगा। उस छबि को अपनी आँखों से निकाल फेकूंगा। मै योद्धा हूँ। महाराणा साँगा की संतान हूँ। सीसोदिया कुल का वशज हूँ। कठोर कर्तव्य-पथ ही अपना परिचित पथ है। देश-भक्ति ही मेरी वाग्दत्ता है। मै किसी के मोह मे नहीं पड़ता। रूप-जाल मुझे नहीं बाँध सकता। (जल्दी जल्दी टहलने लगता है। फिर कहता है) कोई है?

सेवक— (सामने आकर) आज्ञा।

भोज०— सवारी लाने को कहो।

सेवक— जो आज्ञा।

[अभिवादन करके प्रस्थान

भोज०— मीरा एक स्वर्गीय कुसुम है। वह विलास की नहीं पूजा की वस्तु है। वह दिव्य किरण, वह अपूर्व आभा,

वह अनुपम आलोक ! वह ज्योत्स्ना-स्नात देवोपम छवि। वह मेरी आँखों मे बस रही है। वह मेरे रोम-रोम में रम रही है।

[सेवक का प्रवेश

सेवक— सवारी आगई है, श्रीमान्।

भोज०— उसे लौटा दो। (सेवक जाने को उद्यत होता है) और सुनो।

सेवक— आज्ञा।

भोज०— मेरी तलवार- नही-नहीं वीणा उठा लाओ।

सेवक— जो आज्ञा।

[वीणा देकर चला जाता है

भोज०— आज मन में संगीत की लहर उठ रही है (वीणा के तार मिलाता है।)

[सेवक का शीघ्रता से प्रवेश

सेवक— युवराज, महाराणा पधारते है।

भोज०— (चौंक कर) पिता जी आते हैं ?

[वीणा एक ओर रख देता है और प्रवेश करते हुए महाराणा को प्रणाम करता है।]

महाराणा— सगीत का अभ्यास हो रहा है ?

भोजराज— मन बहला रहा था, पिता जी !

महाराणा— बेटा, तुम युवराज हो— मेवाड़ के युवराज।

भोजराज— पिता जी, मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

महाराणा— इस राज्य के भार को वहन करने लायक अपने को बनाओ। मेरे बाद तुम्हें इस दायित्व को लेना है।

भोजराज— आप जैसा कहें वैसा मै करने को तैयार हू।

महाराणा— वैयक्तित सुख-शांति को सामूहिक हित के लिये उत्सर्ग करने मे कभी पीछे पग न दो।

भोजराज— तो ?

महाराणा— प्रजा के लिये अपनी वासनाओं की होली जला दो।

भोजराज— यही होगा।

महाराणा— तो आओ मेरे साथ।

[आगे आगे साँगा और पीछे भोजराज का प्रस्थान

(दृश्य परिवर्तन)

दृश्य दूसरा

[स्थान— महाराणा साँगा का मन्त्रणा-गृह। समय— दिन। सब सामन्त और सरदार उपस्थित हैं। बीच मे महाराणा सिंहासनासीन हैं।]

साँगा— आज का दिन कई संदेश लेकर आया है। युद्ध

और उत्सव का समाचार एक साथ आया है। आज मित्रों के अलावा शत्रुओं का सहयोग भी हमें प्राप्त है।

एक सामन्त— युद्ध और उत्सव दोनों का स्वागत।

साँगा— आज युवराज का नारियल चढ़ेगा।

दूसरा सामन्त— बधाई है।

साँगा— आज हमें समस्त राजपूत जाति के अतिरिक्त चिर शत्रु लोदी वंश का सहयोग भी प्राप्त है।

तीसरा सामन्त— बधाई है।

साँगा— आज मेवाती वीर कंधे से कंधा भिड़ा कर शत्रु से लड़ने को तैयार है।

चौथा सामन्त— बधाई है।

साँगा— आज राठौर, चौहान, सोनगरा, तँवर—

[युवराज भोजराज और कुमार रतनसिंह का प्रवेश। महाराणा को अभिवादन करके बैठते हैं।]

एक सामन्त— महाराणा जी, वह शुभ मुहूर्त किस समय है, सब लोग आतुर हो रहे हैं।

साँगा— अब कुछ देर नहीं है। (भोजराज से) बेटा, मेड़ता से जो नारियल आया है, उसे मैंने तुम्हारे लिये स्वीकार कर लिया है। राव दूदा की पोती राजपूत राजकुमारियों में एक मणि है।

(भोजराज स्वीकृति सूचक सिर झुका लेता है। उसके
मुँह पर लाली दौड़ जाती है।)

दूसरा सामन्त— हमे आज्ञा दीजिये, उत्सव की तैयारियाँ की जाँय।

साँगा— अवश्य, किन्तु ध्यान रहे, युद्ध हमारे सिर पर खड़ा है, भाग्य-निर्णायक युद्ध। असली उत्सव तो हम युद्ध मे विजय प्राप्त करके मनायेंगे।

तीसरा सामन्त— विजय तो महाराणा की चेरी है। वह हमे अवश्य प्राप्त होगी।

साँगा— युवराज का विवाह भी इसी मास मे सम्पन्न करना है। इसके बाद ही हम युद्ध के विषय में निश्चय करेंगे। चलो, चलें।

[राणा उठ खड़े होते हैं। सब लोग उठते हैं,
और एक एक कर जाने लगते हैं।]

[दृश्य परिवर्तन]

दृश्य ग्यारहवाँ

[स्थान— चित्तौड़ का एक उद्यान। समय— सन्ध्या-काल
कुछ लोग हरी-हरी घास पर लोट रहे हैं और आपस मे
बात-चीत करते हैं।]

पहला— भला इस समय प्रासाद कैसा दिखता है?

दूसरा— मानों अमावस मे आकाश का एकखड पृथ्वी पर उतर आया हो।

तीसरा— सचमुच। कैसी अपूर्व शोभा है।

चौथा— केवल चन्द्रमा की कमी है।

पाँचवाँ— बुद्धू हो। चन्द्रमा होगा तो तारों को कौन पूछेगा? तब अमावस कहाँ होगी? तब तो पूर्णिमा होगी।

पहला— यह न, कि तारे चन्द्रमा के स्वागत मे उदय हुए हैं।

दूसरी— हमारे युवराज शीघ्र ही एक चन्द्रमा लाने वाले हैं।

तीसरा— उसके सामने इन तारों की छटा फीकी पड जायगी।

[सब हँसते हैं।

चौथा— सुना है कि मेड़तणी पृथ्वी पर दूसरा चाँद है।

पाँचवाँ— हाँ जी, स्वर्ग की देवागना है।

छठा— हमारे युवराज बडे भाग्यशाली है।

पहला— नही तो मीरा जैसी स्त्री क्या सबको मिलती है?

दूसरा— हम लोग क्या कम भाग्यशाली है।

सब— कभी नहीं, कभी नहीं। मेड़तणी मीराबाई जिनकी राजमहिषी हों वे अवश्य ही परम भाग्यशाली है।

पहला— एक बात और सुनी है।

दूसरा— क्या ?

पहला— मीरा देवी, परम वैष्णवी हैं।

तीसरा— वे कवियित्री भी है।

चौथा— वे नृत्य और सगीत की अधिष्ठात्री देवी हैं।

पाँचवाँ— क्या सचमुच ?

छठा— ठीक कहो।

पहला— यही तो सुना है।

तीसरा— हमारे युवराज को पसन्द आगई ?

पहला— हाँ जी, युवराज क्या कम कला-कुशल हैं ? ऐसी वीणा बजाते है।..

दूसरा— और वैसी ही तलवार भी चलाते हैं।

तीसरा— तलवार चलाना तो क्षत्रियों का काम है।

चौथा— मेड़तणी जी के आने से कला और साहित्य की दुनियाँ मे प्राण आ जायेंगे।

पाँचवाँ— क्यों नहीं, वे तुम्हारे साथ कला और साहित्य की चर्चा करेंगी न ?

चौथा— इसमें अन्याय ही क्या होगा ?

पाँचवाँ— तुम मूर्ख हो। कभी कोई राजरानी महलों से बाहर आती है।

चौथा— तो तुम देवी मीरा के बारे में नही जानते। मेड़ता के देव-मन्दिर मे जो एक बार भी गया हो उससे पूछना।

पाँचवाँ— क्या पूछना?

चौथा— वह तुम्हे बताएगा कि वहाँ कीर्तन मे वे किस प्रकार भाग लेती हैं। उनके भजन घर-घर गाये जाते है।

तीसरा— परन्तु भाई, यह मेड़ता नहीं चित्तौड है। राव दूदा का घर नहीं राणा साँगा का आवास है। यहाँ वे लडकी नहीं वधू होंगी।

चौथा— तो भी।

तीसरा— तो भी क्या, मीरा देवी हमारे तुम्हारे लिये उसी तरह दुर्लभ रहेगी जिस प्रकार महारानी कर्मवती।

चौथा— रहे, परन्तु उनके विचारों की छाया से ही नगर का वातावरण बदल जायेगा।

पहला— एक नई दुनिया बस जायेगी।

दूसरा— नृत्य-गीत, भजन-पूजन, काव्य-साहित्य— क्या कहना है। हम भक्तों के लिये तो स्वर्ग की सृष्टि होगी।

तीसरा— तुम लोग चंडूखाने की बातें करते हो। महाराणा साँगा ने जिसे युवराज की जीवन-सगिनी चुना है वह कभी इस मिट्टी की नहीं हो सकती।

चौथा— देख लेना।

तीसरा— देख लेंगे।

[नेपथ्य मे बाजे बजते हैं। जय-जयकार
सुन पडता है।]

सब— युवराज की सवारी मन्दिर की ओर जा रही है। चलो, चल कर देखे।

[सब का प्रस्थान

[दृश्य परिवर्तन]

दृश्य बारहवाँ

[स्थान— युवराज भोजराज का शयन-कक्ष। समय— रात्रि। युवराज लेटे हैं। बाई ओर दीपक जल रहा है। अगरबत्ती का श्वेत सुगन्धित धुआँ कुंडली बनाता हुआ ऊपर उठता और अनेक आकार धारण करता हुआ अन्त मे खिड़की के रास्ते बाहर निकल जाता है। कभी-कभी हवा के थपेडे से मार्ग-भ्रष्ट होकर पलट पड़ता है, जिससे कमरे में सुगन्धि की लहर आ जाती है।]

युवराज— जिसे सवेरे तक मैं आकाश-कुसुम समझता था, वह प्रिया मीरा अब मेरी है। विधि का विधान कितना बलवान है। मनुष्य के प्रयास उसके सामने कितने नगण्य है।— आज आँखों मे नींद नही। हृदय मे एक मीठी-मीठी गुदगुदी हो

रही है। मुझ युद्ध-व्यवसायी राजपूत की आँखों मे आज कैसा रगीन नशा छा रहा है! जब मेरी यह दशा है तो उसकी क्या होगी?— परन्तु शायद, कौन जाने? वह, वह रूपसी देवी- वह वासन्ती आभा!— वह कानन कुसुमाजलि। और मै, मै एक खड्गधारी सैनिक।— आगे सोचते हुए भय लगता है। (आँख बन्द कर लेता है। कुछ क्षण उसी प्रकार रहने के बाद आँखे खोल कर) वह देवी है और मै उसका पुजारी। वह देवता का धर्म है, वह पूजा का प्रसून है, वह भोग का पदार्थ नहीं। मै उस से अपना हृदय पवित्र और जीवन धन्य करूँगा।— आओ! मीरा! देवी। तुम आओ। हृदय के इस मन्दिर मे तुम सब से शीर्ष स्थान पर विराजमान हो।

[उठ कर बैठ जाता है और वक्षस्थल पर हाथ
रखता है। दूर कहीं सगीत हो रहा है
उसकी आलाप कानो
में पड़ती है।]

यह गाना उसके कल-कठ के सामने कितना फीका है। इस मे लोच नही, इसमे मधुरता नहीं, इसमे मादकता नहीं। उसकी वह स्वर्गीय आलाप अभी तक प्राणों में गूँज रही है। कब वह क्षण होगा जब चोरी चोरी नहीं, हृदय के समीप हृदय रख कर मै उसकी स्वर-लहरी का रस पीऊँगा।

[ऊदा बाई का प्रवेश, अवस्था बारह-तेरह साल]

ऊदाबाई— भाई जी, इस समय आपके घर में आने के लिये क्षमा चाहती हूँ।

भोजराज— ऊदा बहन, कहो।

ऊदा०— माँ ने मुझसे शर्त लगाई है।

भोजराज— क्या ?

ऊदा०— बताओगे ?

भोजराज— कहो भी।

ऊदा०— माँ कहती हैं भाभी काली हैं।

भोजराज— और तुम ?

ऊदा०— मै कहती हू— नहीं।

भोजराज— क्यों ?

ऊदा—क्योकि वे भाभी हैं। भाभी कभी काली नहीं हो सकतीं।

भोजराज— और ?

ऊदा०— और वे कृष्ण की भक्त है।

भोजराज— अच्छा।

ऊदा०— तो आपको नही मालूम ?

भोज०— मुझे ?

ऊदा०— हाँ, क्यों नही। आपने क्या उन्हें देखा नहीं ?

भोज०— मैंने। (ऊदा के मुँह की ओर देखने लगता है)

ऊदा०— आपको मुझे बताना होगा।

भोज०— मै तो नहीं जानता।

ऊदा०— वाह, आप मेड़ता गये जो थे।

भोज०— तो क्या मै किसी को देखने गया था?

ऊदा०— और नहीं तो क्या।

भोज०— तब मै कहूँगा कि ऊदा को अक्ल नहीं है।

ऊदा०— और मै कहूँगी, भैया को मेरा विश्वास नही है।

भोज०— किससे?

ऊदा०— भाभी से।

भोज०— भाभी से?

ऊदा०— जरूर।

भोज०— तब तुम सचमुच पगली कहलाओगी।

ऊदा०— अगर न कहूँ तो?

भोज०— तो कहलाओगी राजकुमारी ऊदाबाई। इस से अधिक और क्या समझती हो?

ऊदा०— कुछ नहीं, कुछ (बाहर की ओर झाँकती है) माँ बुला रही हैं। मै जाती हूँ।

(ऊदा का प्रस्थान)

भोज०— अरे, ऊदा यह सब क्या कह गई? मै सब कुछ जानता हूं। मीरा के बारे में मुझ से अधिक जानकार कौन

है ? यहाँ से मेड़ता तक मैं उसके सम्बन्ध में क्या नहीं सुन चुका ? परन्तु— परन्तु, कृष्ण-दीवानी मीरा क्या मुझ से प्रेम कर सकेगी ? अमृतत्व की प्यासी पुण्यात्मा क्या नश्वर हाला से तृप्त हो सकेगी ? कौन जाने ?

[ध्यानावस्थित हो जाते हैं]

[परदा]

अंक दूसरा

❀❀❀

दृश्य पहला

[**स्थान**— मेडता का देव-मन्दिर । **समय**— सायकाल । पुजारी एव दर्शनार्थी भक्त उपस्थित हैं, परन्तु भीड कम है । उदासी और सूनापन सा छा रहा है । मन्दिर में न वैसा प्रकाश है न वैसी सजावट । जीवन और चहल पहल जैसे शिथिल हो गए हो । घंटे की ध्वनि, आरती के गीत निष्कप और निस्पद से हैं । उन से प्राणो मे भक्ति-विह्वलता नही भरती ।]

पुजारी— कल तक भक्तों को भगवान की आवश्यकता थी, आज भगवान को भक्तों की आवश्यकता है ।

एक भक्त— पुजारी जी क्षमा कीजिये ।

दूसरा भक्त— सच तो यह है कि आज मन्दिर श्रीहीन लगता है ।

तीसरा भक्त— इतनी उदासी ।

चौथा भक्त— ऐसा सूनापन ।

पॉचवॉ भक्त— भगवान भक्ति मे रहते हैं । बाई जी के

साथ जब भक्ति ही चली गई तो मन्दिर मे सूना न लगेगा तो क्या होगा ?

छठा भक्त— सच है, बाई जी के साथ भक्ति और-उनकी भक्ति के साथ भगवान भी अब मेवाड़ मे जा बसे हैं।

पुजारी— भगवान तो यही है और यों तो विश्व के कण कण मे वे व्याप्त हैं, किन्तु हमारी बाई जी के बिना उनको भी भोग नही भाता है— वे भक्त-वत्सल है न ?

दूसरा भक्त— सच है।

तीसरा भक्त— तो हम भगवान को रिझाएँ।

चौथा भक्त— आओ, हम सब भगवान को प्रसन्न करें।

पाँचवाँ भक्त— अवश्य। हम भगवान को बता दे कि अभी उनके भक्तों की कमी नहीं है। क्या हुआ बाई जी चली गईं। भक्ति की जो गंगा एक बार बही थी वह अब भी वैसी ही वह रही है।

छठा भक्त — हाँ, वृद्ध राव ऊदा का लगाया हुआ भक्ति का वह वृक्ष अभी खड़ा हुआ है। बाई जी ने अपने हृदय के रस से उसे सींचा है। वह क्या कभी सूख सकता है ?

पहला भक्त— तो आओ, हम भगवान का कीर्तन करे।

पुजारी— बोलो, गोपाल कृष्ण की जय।

सब— गोपाल कृष्ण की जय।

[सब एकत्र होकर नाचते, बजाते और
जय-जयकार करते हैं।]

पुजारी— यह सब व्यर्थ है। भगवान भक्ति-विह्वल कंठ की पुकार सुनना चाहते हैं। यह कोलाहल नहीं।

पहला भक्त— भगवान् को हमारा प्रदर्शन पसन्द नहीं।

पुजारी— भगवान् प्रदर्शन नहीं चाहते हैं— हृदय का उद्‌गार चाहते हैं।

दूसरा भक्त— अभी तो आप कहते थे भगवान् को आज भक्तों की आवश्यकता है।

पुजारी— अवश्य, परन्तु ऐसे भक्तों की जो कीर्तन और प्रदर्शन को नहीं हृदय की तन्मयता को अपनी भक्ति का आधार बनाये।

तीसरा भक्त— परन्तु आज हमारे हृदय शुष्क-कठोर हो रहे हैं।

चौथा भक्त— उनमें करुणा की आर्द्रता नहीं है।

पाँचवाँ भक्त— वे अनुभूति-शून्य हो गये हैं।

छठा भक्त— यह जड़ता इसीलिए है कि रस-स्रोत हमारे मध्य नहीं बहता।

पहला भक्त— अवश्य ही भक्ति-रस का वातावरण बाई जी के साथ चला गया।

पुजारी— तो भक्ति और भगवान् के अभाव में मन्दिर के द्वार खुले नही रह सकते।

[पट बन्द करता है
भक्तो मे कोलाहल मचता है।]

(दृश्य परिवर्तन)

❀

दृश्य दूसरा

[स्थान— चित्तौड़ मे मीराबाई का महल। समय— सायकाल। मीरा बैठी है। दो परिचारिकाएँ पखा झल रही हैं। मीरा उन्हे हाथ के इशारे से रोक देती है।]

मीरा— बस करो, जाओ।

दासी— जो आज्ञा। (पंखा हाथ में लिये जाती हैं।)

मीरा— (दीवार से युवराज का चित्र उतार लेती है। उसे गोद में रख कर देखती है।) भूलती हूँ। नहीं, कभी नहीं। मेरे स्वप्नों के निर्माता, मेरी साधना के प्राण, मेरे जीवन-सर्वस्व, उन्हें कैसे भूल सकती हू। बचपन से जिस रूप को मेंहदी की तरह रोम-रोम मे रचा लिया उसे कैसे विस्मृत कर सकती हूँ। वही आकृति, वही भंगिमा। 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' तुम वही तो हो, जिसे माँ के आदेश ने वरण कराया था। मेरे बचपन के स्वामी, युग युग के अन्तर्यामी, मुझे क्षमा करो। मेरे मन की दुविधा दूर करो।

[गंगाजल की झारी लेकर दासी का प्रवेश।
झारी रख कर चली जाती है।
मीरा कहती रहती है।]

मीरा— दादा जी, आप स्वर्ग से मुझे आशीर्वाद दो। पिता जी का प्रण और आपका आशीर्वाद दोनों सफल हुए। मैंने आपके प्रसाद से अपने परमेश्वर को पा लिया। मेरे मनोनिवेश मे बसने वाले भगवान् का साक्षात दर्शन करके जीवन धन्य हो गया। अब मीरा को कुछ पावना नहीं है। हृदय की वह धुँधली मूर्ति उस दिन अचानक मन्दिर के उद्यान में साकार होकर विलुप्त हो गई। खूब। छलोगे मीरा को ? अच्छा छलो। किन्तु अब, अब कहाँ जाओगे ?

[रत्ना और कचन का प्रवेश। दोनों पूजा
के पुष्प लेकर आई हैं। पुष्प
लाकर सामने रख देती हैं।]

रत्ना— यह कंचन आज बावली हो गई है।

मीरा— क्यों ?

रत्ना— इसे नाग ने डस लिया है।

मीरा— नाग ने ? (हँसती है)

रत्ना— हाँ, नाग ने ! (कचन की वेणी पकड़ती है।)

मीरा— इसी नाग ने !

कचन-- यह आप बावली हो गई है।

मीरा-- इसे भी किसी ने डस लिया?

कचन-- प्रेम ने।

मीरा-- तुम दोनों बावली हो।

[दासी युवराज के आने की सूचना देती है
मीरा स्वागत को खड़ी होती है। युवराज
प्रवेश करते हैं।

युवराज-- (अपने चित्र को देख कर) मै तो यहाँ पहले से
ौजूद हूँ।

मीरा-- आप कहाँ नही है?

युवराज-- ओ हो, तो क्या मै सर्वव्यापक हू?

मीरा-- कम से कम मेरे लिये।

युवराज-- धन्य भाग। पर इसमे तो घाटा ही है।

मीरा-- क्यों?

युवराज-- सर्वत्र रहने की अपेक्षा एक स्थान पर रहना अधिक हितकर है।

मीरा-- वहाँ तो आपका नित्य निवास है। (रत्ना और कचन के प्रति) आसन।

रत्ना-- आसन, यह रहा।

कचन— आसन, यह रहा। (आसन की ओर इङ्गित करती है।)

मीरा— स्वामी विराजें।

युवराज— प्रिये, यह चिराराधित क्षण स्वर्ण-पात्र में भर रखने योग्य है।

मीरा— प्रभु, यह चिर-प्रतीक्षित हृदय चरणों पर चढ़ा देने योग्य है।

[युवराज आसन पर विराजते हैं। रत्ना पात्र आगे बढा देती है। मीरा विधिवत पूजन करती हैं। सखियो का प्रस्थान]

युवराज— किन्तु कीर्तन बिना तो पूजन अपूर्ण है।

मीरा— भक्त के लिये कुछ भी अदेय नही है।

(गाती है)

मै गिरधर रँग राती।
पचरँग चोला पहिर सखी मै झिरमिट खेलन जाती।
ओहि झिरमिट मे मिल्यो सावरो खोल मिली तन गाती॥
जिनके पिया परदेश बसत हैं लिख लिख भेजै पाती।
मोरे पिया मोरे हीय बसत हैं ना कहु आती जाती॥

(भावावेश नाट्य करती है।)

युवराज— कृतार्थ हुआ।

मीरा— धन्य भाग्य, मेरे स्वामी को मेरा भक्ति-भाव पसन्द तो आया।

युवराज— यह क्या कहती हो? भक्ति-भाव के योग्य मै नहीं हूँ। मुझे वह प्रेमामृत पिलाओ जिसको पीकर सारे विश्व को भूल जाऊँ। हृदय निमग्न हो जाये, तन-मन की सुधि न रहे।

मीरा— मीरा के पास जो कुछ है, वह अपने प्रभु के ही लिये है।

युवराज— तो रानी, यह श्रद्धा का व्यवधान हटा लो। आओ!

[हाथ पकड़ कर अपने समीप आसन पर बिठा लेता है।

मीरा— मै सोच रही थी पिता जी का आग्रह मेरी स्वप्निल निशा का निष्ठुर प्रभात होगा। मेरा भाव-जगत छिन्न-भिन्न हो जायगा। कैसे भ्रम में थी मै! स्वप्नों का वही ससार मेरे भाग्य से सत्य हो गया। मेरे आराध्य, मेरे देव, आत्मा के अमर प्रकाश, मुझे इसी प्रकार सदा प्रकाशमान करो।

[गोद मे सिर रख देती है]

युवराज— प्रिये!

मीरा— स्वामी!

युवराज— देखो, आज आकाश कितना प्रसन्न है? नील आवरण में तारागण कैसे जाग रहे हैं? हमारे मिलन मे उनकी स्वीकृति कितनी स्पष्ट है? बोलो-बोलो।

[हाथ से मुँह ऊपर उठाता है। मीरा के सिर का वस्त्र खिसक कर गिर पड़ता है। आवरणहीन मुख की सुधा को एकटक पान करता है। मीरा आँखे खोल कर आकाश की ओर ताकती है।

[दृश्य परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

स्थान— चित्तौड मे राजमहल। समय— अपराह्न काल।
[मीरा और ऊदाबाई बैठी बातें कर रही हैं।]

ऊदा— भाभी, एक बात पूछूँ। बुरा तो न मानोगी?

मीरा— वाह बाई जी, क्या बात पूछने से कोई बुरा मानता है?

ऊदा— भैया, तो मानते हैं।

मीरा— बुरा मानते है?

ऊदा— हाँ, मैंने पूछा था।

मीरा— क्या पूछा था ?

ऊदा— यही।

मीरा— क्या ?

ऊदा— (न बताने का-सा नाट्य करती है) यही कि भाभी
सी हैं ?

मीरा— उन्होंने नही बताया ?

ऊदा— नहीं बताया। ऊपर से मुझे पगली ठहरा दिया।

मीरा— अनुचित किया। परन्तु बाई जी !

ऊदा— कहिये।

मीरा— वे कैसे बताते ?

ऊदा— क्यों ?

मीरा— वे तो मुझे जानते न थे।

ऊदा— ऊँह, नहीं जानते थे, तो मेड़ता क्या यों ही गये थे?
लो, रहने दो भाभी !

[मीरा हँसने का नाट्य करती है।
ऊदा चुप रहती है।]

मीरा— यह ठीक कहा।

ऊदा— हाँ, ठीक कहा। तभी तो इतनी जल्दी ब्याह
ो गया।

मीरा— बाई जी, तुम्हारा भी इसी तरह, इतनी ही जल्द करा दूं। तुम भी अपने वर को जानती हो न ?

ऊदा— अच्छा भाभी, आपने उस दिन बगीचे मे गाया था— 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'

मीरा— गाया तो था।

ऊदा— रत्ना कहती है। वह गीत आप ही का रचा है।

मीरा— हाँ।

ऊदा— तो गीत को इतना झूठा बनाना चाहिये ?

मीरा— गीत मे क्या झूठा है ?

ऊदा— आपने लिखा है कि आपके एक गिरधर गोपाल ही हैं, दूसरा कोई अपना नहीं।

मीरा— यह तो ठीक लिखा है।

ऊदा— सोच लो।

मीरा— सोच लिया।

ऊदा— तो भैया भी आपके कोई नही है ?

मीरा— क्यों नहीं।

ऊदा— फिर ?

मीरा— गिरधर गोपाल और वे क्या दो है ?

ऊदा— तो तुम भैया को गिरधर गोपाल कहती हो ?

मीरा— कहती क्यों हूँ। वे ही तो है। मेरे स्वामी, मेरे प्रभु, मेरे आराध्य— उनके अनेक नाम हैं।

ऊदा— पर मै तो एक ही नाम जानती हूँ। मझले और छोटे भैया भी और कोई नाम नहीं जानते।

मीरा— कैसे जान सकते है?

ऊदा— क्यों?

मीरा— अभी नही। विवाह हो जाने पर समझ जाओगी, बाई जी। स्त्री ही अपने स्वामी के अनेक नाम जानती है। उसके लिये वे ही पुरुष है, वे ही देवता है, वे ही पूज्य है, वे ही आराध्य हैं।

ऊदा— भाभी।

मीरा— कहो, बाई जी।

ऊदा— भैया को भी आपने यह बताया?

मीरा— उन्हें क्या बताऊँ। वे स्वय जानते है।

ऊदा— वे जानते है?

मीरा— वे हृदय मे, मेरे रोम रोम में रमे हुए हैं। वे क्यों न जानेंगे? उनसे क्या छिपा है?

ऊदा— वे सब जानते है?

मीरा— सब जानते हैं।

मीरा— सब। रत्ती-रत्ती।

ऊदा— यह मै नहीं मान सकती।

मीरा— मानोगी, पर अभी नहीं।

ऊदा— कभी नही।

मीरा--- अवश्य मानोगी, बाई जी। आम के कुज मे जब तक कोकिला नहीं बोलती तभी तक बसन्त दूर रहता है। जब वह एक बार आकर कूक उठती है, तो वह बिना आये नहीं रह सकता। जिस दिन बीच का अन्तर तिरोहित हो जायगा उस दिन क्या न मानने योग्य कुछ भी रह सकेगा ?

[भोजराज का प्रवेश। दोनो ससम्भ्रम उठ खड़ी होती हैं।]

भोज-- ऊदा !

ऊदा— भैया।

भोज— क्या झगड़ा रही हो ?

ऊदा— आप तो मेरी बातों में झगड़ा ही देखते है।

(गुस्से का नाट्य करती है)

भोज— तो रूठ गई ?

ऊदा— हॉ, रूठ जाऊँगी।

भोज-- अच्छा, यह न कहूगा। अब तो बताओ, क्या कह रही थी ?

ऊदा--- ये भाभी कहती है कि आप इनके मन की हर एक बात जानते हैं।

भोज--- मै कैसे जानू गा ? क्या मै ज्योतिषी हू ?

ऊदा--- यही तो मै कहती हूँ। (मीरा से) अब बोलो न, भाभी ?

मीरा— दो आदमियों के बीच मे मै नही बोलती।

[दासी का प्रवेश

दासी— बाई जी को महाराणी जी उपवन में बुला रही है।

ऊदा— (जाते हुए) भाभी, आपको भी आना पड़ेगा।

मीरा— मै शीघ्र आ रही हूँ।

[ऊदाबाई का दासी के साथ प्रस्थान

भोज— प्रिये।

मीरा— स्वामी।

भोज— तुम माता जी के पास जा रही हो। मुझे भी युद्ध-मन्त्रणा मे आज सम्मिलित होना है। चलो, चले।

[दोनो का प्रस्थान

(दृश्य परिवर्तन)

❀

दृश्य चौथा

[**स्थान**— चित्तौड़ का राजप्रसाद। **समय**— दिन। महाराणा साँगा बैठे हैं। तलवार कमर से खोल कर जघा पर रख छोड़ी है। महारानी पास बैठी हैं। महारानी उत्सुकता से राणा के मुख की ओर देख लेती हैं, फिर सोचने लगती हैं।]

साँगा— महाराणी।

महाराणी--- (चुप)

साँगा--- महाराणी।

महाराणी--- सामन्तवर्ग और मन्त्री-परिषद् की सम्मति के बाद अब महाराणी की सम्मति का मूल्य?

साँगा— बहुत मूल्य है, महाराणी।

महाराणी--- व्यर्थ है, महाराणा।

साँगा— तुम नही जानती। मन्त्री योजना दे सकते है। सामन्त अपना रक्त बहा सकते है।

महाराणी— फिर और क्या चाहिये?

साँगा--- चाहिये प्रेरणा। महाराणी, वह प्रेरणा और कोई नहीं दे सकता। केवल तुम दे सकती हो।

महाराणी-- मैं दे सकती हूँ— प्रेरणा।

साँगा-- हाँ। उसके बिना योजना बेकार है, उत्सर्ग और बलिदान व्यर्थ हैं।

महाराणी— स्वामी, शत्रु का नाम ही प्रेरणा के लिये बहुत है। फिर, सुनती हूँ आज महाराणा की अध्यक्षता में एक सैन्य-समुद्र तैयार है। हिन्दू और मुसलमानों का सम्मिलित बल आपके चरणों मे पडा है। यदि सहयोगी सच्ची भावना से प्रेरित है तो विजय में सन्देह करना मूर्खता है। शत्रु कितना

ही प्रबल हो, भारत की मिट्टी ने उसे अभी अपना नहीं माना। यदि अपने लोगों पर ही विश्वास किया जा सके तो यह सुनहरा अवसर है।

सॉगा— महाराणी, परन्तु सन्देह क्यों और किस पर?

महाराणी— यह मैं नहीं कहती।

सॉगा— मुझे तो अपने को छोड कर और किसी पर सन्देह नहीं। मेरे सहयोगी मेरे शत्रु-मित्र दोनों है, उनकी शत्रुता-मित्रता है मेरे वैयक्तिक जीवन से। देश की दृष्टि से उनका और मेरा कर्तव्य एक है। वे इस समय मेरे सहयोगी बनने नहीं अपना कर्तव्य पूरा करने आये है।

महाराणी— मै चाहती हू उन्हे अपने कर्तव्य का पूरा ज्ञान हो।

सॉगा— यही होगा।

महाराणी— तो एक नहीं दस बाबर तिनके की तरह उड़ जॉयगे।

सोगा — (तलवार हाथ मे लेकर) महाराणी तुम मूर्तिमती स्फूर्ति हो।

महाराणी— मेवाड़ के राज-भवन मे शक्तियों का ही सचय हो रहा है। मै स्फूर्ति हू। वधू भक्ति है।— कीर्ति की कमी है, अबकी उसे ले आना। इसी तरह सबका सग्रह हो जायगा।

साँगा—सच कहती हो। मैंने भी सुना है, वधू की वाणी मे भक्ति का आसव है। भक्त-शिरोमणि राव दूदा की पौत्री की अमृत-वाणी से यह मन्दिर पवित्र हो सका। कितने गौरव की बात है, महाराणी। आज महाराणा कुभा की आत्मा कितनी प्रसन्न होगी। आज कितने दिन बाद वीरता के महानद मे भक्ति की मन्दाकिनी का सगम हुआ है।

महाराणी—हम नारी है। हम घर के भीतर रहती हैं हम भावना मे उड़ना नही जानती। हम यथार्थ और व्यावहारिक को सहेजती है। पुरुप यथार्थ से इतने भार-ग्रस्त रहते हैं, कि अवसर पाते ही, कल्पना के आकाश मे ऊँची उडान लेने लगते है। इसलिये—

साँगा—हम दार्शनिक नही है, परन्तु जगत मिथ्या है इस पर विश्वास करने को न जाने क्यों हृदय कभी-कभी आतुर हो पड़ता है। तब इस मिथ्या जगत् मे यथार्थ की पृथ्वी से भावना का आकाश क्या अधिक सुन्दर नहीं है? महाराणी क्या तुम्हारा मन कभी उस मे बिहार करने को नहीं चाहता। सदा युद्ध और राजनीति का सौदा करने वाला मेरा मुर्दा हृदय इन अमृत-घूँटों से ही सजीव है।

(दासी आकर मन्त्री के आगमन का समाचार देती है।)

महाराणी—हम मिथ्या मे ही यथार्थ की प्राप्ति करती हैं।

(एक युवती मन्दिर की सीढियों पर तन्म
होकर बैठी गा रही है ।)

गाना

आली, मोहि लगै वृन्दावन नीको ।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसन गोविंद जी को ।
निरमल नीर बहत जमुना मे भोजन दूध दही को ।
रतन सिंहासन आप विराजे मुकुट धरे तुलसी को ।
कुञ्जन कुञ्जन फिरति राधिका शब्द सुनत मुरली को ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको ।

पहला व्यक्ति— धन्य हो ।

दूसरा व्यक्ति— फिर से गाओ ।

(जेब से कुछ निकाल कर गायिका की
झोली मे डालता है ।

तीसरा व्यक्ति— मेड़ताणी जी का हृदय कितना सुन्दर है ?

चौथा व्यक्ति— ऐसी भक्ति बडे भाग्य से मिलती है ।

पहला व्यक्ति— कैसी अपूर्व पद-योजना है ।

दूसरा व्यक्ति— कैसा तन्मय भाव है ।

तीसरा व्यक्ति— युवराज कुछ अधिक बीमार हैं ?

चौथा व्यक्ति— ऐसा तो कुछ नहीं सुना ।

पहला व्यक्ति— भगवान् सब मंगल करें।

दूसरा व्यक्ति— मेड़ताणी जी को अचल सुहाग दें।

तीसरा व्यक्ति— यही होगा सहस्रों दीन-दुखियों की मंगल-कामना उनके साथ है।

चौथा— क्या कहें। जब से चित्तौड़ की भूमि में उनके चरण पड़े हैं, तब से संसार बदल गया है। गुण की कदर हो गई है। कला का लोग आदर करने लगे है। दीन-दुखियों को संरक्षण मिल गया है। भगवान् क्या इतने निर्दय हैं जो दीन-वत्सला मेड़ताणी को किसी प्रकार का दुख दिखायेंगे ?। युवराज को आज ही स्वास्थ्य-लाभ होगा।

पहला व्यक्ति— अवश्य होगा, दादा जी।

दूसरा व्यक्ति— आओ सब लोग भगवान् के चरणों में अपनी शुभ कामनाएँ समर्पित करें।

सब— अवश्य।

(सब हाथ जोड़ कर कहते हैं और
समवेत कण्ठ से बोलते हैं।

मनरे परस हरि के चरन।
सुभग सीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन।
जिन चरन प्रल्हाद परसे इन्द्र पदवी धरन।

(एक युवती मन्दिर की सीढ़ियों पर तन्मय होकर बैठी गा रही है।)

गाना

आली, मोहि लगै वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसन गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमुना में भोजन दूध दही को।
रतन सिंहासन आप विराजे मुकुट धरे तुलसी को।
कुञ्जन कुञ्जन फिरति राधिका शब्द सुनत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको।

पहला व्यक्ति--- धन्य हो।

दूसरा व्यक्ति--- फिर से गाओ।

(जेब मे कुछ निकाल कर गायिका की झोली में डालता है।

तीसरा व्यक्ति— मेड़ताणी जी का हृदय कितना सुन्दर है ?

चौथा व्यक्ति--- ऐसी भक्ति बड़े भाग्य से मिलती है।

पहला व्यक्ति— कैसी अपूर्व पद-योजना है।

दूसरा व्यक्ति— कैसा तन्मय भाव है।

तीसरा व्यक्ति— युवराज कुछ अधिक बीमार हैं ?

चौथा व्यक्ति— ऐसा तो कुछ नहीं सुना।

पहला व्यक्ति— भगवान् सब मगल करें।

दूसरा व्यक्ति— मेड़ताणी जी को अचल सुहाग दे।

तीसरा व्यक्ति— यही होगा सहस्रों दीन-दुखियों की मगल-कामना उनके साथ है।

चौथा— क्या कहे। जब से चित्तौड़ की भूमि में उनके चरण पडे हैं, तब से ससार बदल गया है। गुण की कद्र हो गई है। कला का लोग आदर करने लगे हैं। दीन-दुखियों को सरक्षण मिल गया है। भगवान् क्या इतने निर्दय हैं जो दीन-वत्सला मेड़ताणी को किसी प्रकार का दुख दिखायेंगे ?। युवराज को आज ही स्वास्थ्य-लाभ होगा।

पहला व्यक्ति— अवश्य होगा, दादा जी।

दूसरा व्यक्ति— आओ सब लोग भगवान् के चरणों मे अपनी शुभ कामनाएँ समर्पित करें।

सब— अवश्य।

(सब हाथ जोड कर कहते हैं और
समवेत कण्ठ से बोलते हैं।

मनरे परस हरि के चरन।
सुभग सीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन।
जिन चरन प्रल्हाद परसे इन्द्र पदवी धरन।

जिन चरन ध्रुव अटल कीने राखि अपनी सरन।
जिन चरन ब्रह्माड भेंट्यो नख-सिख सिरी धरन।
जिन चरन प्रभु परस लीने तरी गौतम घरन।
जिन चरन काली नाग नाथ्यो गोप लीला करन।
जिन चरन गोवरधन धरयो इन्द्र को ग्रव हरन।
दास मीरा लाल गिरधर अगम तारन तरन।

(दृश्य परिवर्तन)

छठा दृश्य

[स्थान— चित्तौड़ का राज-प्रासाद। समय— दिन। रत्ना उदास बैठी है। कचन धीरे धीरे आती है।]

रत्ना— कचन, युवराज कैसे हैं ?

कचन— अभी वही दशा है।

रत्ना— बाई जी क्या कर रही हैं ?

कंचन— तू जिस तरह छोड़ आई थी। उसी तरह है। उन्होंने तन-बदन का होश विसार दिया है। रात-दिन अथक सुश्रुषा में लगी हैं। किसी को पास नहीं रहने देतीं। अपने हाथों ही सब कुछ करती है।

रत्ना— तो मैं जाऊँ ?

कचन— नहीं, मुझे भी तेरे पास रहने की आज्ञा हुई है।

रत्ना— नही बहन, अब तू यहाँ रह। मै एक बार जाऊँगी, यहाँ कोई विशेष काम नहीं है। याचकों को इच्छा-दान दिया जाय, बस इसको देखती रहना।

कचन— पर बहन, बाई जी कुपित होंगी।

रत्ना— हो लेगी। पर उन्हे थोड़ा विश्राम दिलाना आवश्यक है।

कंचन— मैने बहुत कहा। स्वय युवराज ने कहा, पर वे मानती ही नहीं।

रत्ना— युवराज ने क्या कहा?

कचन— यही कहा, तुम थोड़ा विश्राम कर लो। नहीं तो मेरी सुश्रूषा क्या करोगी? उस दिन मन्दिर से जाकर तुरन्त लौट आई थीं, तब भी युवराज ने कहा था इतनी जल्दी आ गई। भगवान् के निकट थोड़ी देर बैठ कर प्रार्थना करतीं। वह भी मेरे लिये हितकर होता।

रत्ना— बाई जी ने क्या उत्तर दिया?

कंचन— यही कहा, आप चिन्ता न करें। मुझे बहुत अभ्यास है। थकान मुझे नहीं होती, होने से विश्राम कर लूंगी। अब शायद महाराणा जी की उपस्थिति से उन्हे कुछ आराम मिल सके।

रत्ना— तो महाराणा जी भी युवराज के समीप ही हैं?

स्वामिन, प्रभो, आज आपको इसका निर्णय देना होगा। भक्त की जिज्ञासा को शान्त करना होगा। (पृथ्वी पर सिर टेक देती, और उसी प्रकार पड़ी रहती है। मन्दिर में उज्ज्वल प्रकाश होता है और धीरे-धीरे फिर कम हो जाता है।) समझी। आपका यही आदेश है। मेरे दुर्बल कन्धों पर यह भार। भगवन्, मैं नहीं जानती मैं क्या इसके उपयुक्त हूँ। मैं इस महान गौरव को धारण कर सकूँगी, इसका मुझे भरोसा नही। मुझे भरोसा केवल श्री चरणों का है। आपका आदेश मेरे सिर-माथे। लाइये, प्रभो मुझे अपने चरणों की रज दीजिये।

(जब वह सिर उठाती है तो चेहरे से सारा आवेश धुल गया-सा प्रतीत होता है। सौम्य-स्निग्ध, शान्त प्रतिच्छवि-सी दीपक के आलोक में उठ कर खड़ी हो जाती है। खिसका हुआ अंचल सिर पर खींच लेती है। एक बार फिर अभिवादन करके धीरे-धीरे बाहर निकलती है। मन्दिर के बाहर युवराज भोजराज के निधन का समाचार सुना जाता है। सब त्राहि त्राहि करते हैं। मीरा उसी प्रकार शान्त-भाव से चली जाती है। अपने सुहाग-चिन्ह तथा आभूषण उतार-उतार कर गरीबों को देती जाती है।)

[दृश्य परिवर्तन]

दृश्य आठवाँ

[स्थान— चित्तौड़ का राज-भवन । समय— प्रभात । महाराणा साँगा अपने कक्ष के खुले द्वार के बाहर फैले हुए दिगन्त-व्यापी प्रकाश के शून्य-विस्तार को स्थिर दृष्टि से देख रहे हैं। उनके बलिष्ठ शरीर में स्फूर्ति का अभाव नजर आता है। उनके पराक्रमी व्यक्तित्व से तेजस्विता खो गई-सी दिखती है। चारो ओर उदासी का साम्राज्य है। अन्तःपुर से रुदन की क्षीण-ध्वनि उठ कर शून्य मे निस्तब्ध हो रही है।]

साँगा— इतनी जल्दी समाप्त हो गया। आशाओं का वह तुङ्ग शिखर। जीवन-नाटक का एक खेल, कितना सत्य और यथार्थ-सा था वह। उसकी सत्यता अब कहाँ है ? सर्वत्र शून्यता ही शून्यता है। इतना क्षण-भंगुर है यह मानव-जीवन। तो भी मनुष्य कितने जगड्वाल रचता है। यदि उसकी स्थिरता एक क्षण के लिये भी सत्य होती तो न जाने क्या होता? मानव के दुस्साहस का अन्त नहीं है। किन्तु यह सब व्यर्थ है— बिलकुल व्यर्थ। झूठी आशा, झूठी माया, झूठा मोह— इन्ही को लेकर मनुष्य एक स्वप्न-सृष्टि रचता है। उसी में भूला रहता है। कभी ठहर कर यह सोच लेता कि यह सब ताण्डव किस लिये, सो शायद उसके निस्सार प्रयत्नों की सीमा बँध

जाती और वह परिणाम की भयंकर नग्नता के अनुभव से सशंक हो जाता।

[सेवक का प्रवेश

सेवक— (अभिवादन सहित) मन्त्री जी अन्नदाता जी का कुशल पूछते हैं।

साँगा— कुशल ? उँ हू— जाओ कह दो अवकाश के समय मिलेंगे।

सेवक— जो आज्ञा। (जाने को उद्यत होता है)

साँगा— ठहरो, कह देना महाराणा अस्वस्थ हैं।

सेवक— जो आज्ञा। (जाता है, राणा फिर पुकारते हैं)

साँगा— सुनो, मन्त्री जी को आने दो।

सेवक— जो आज्ञा।

(जाता है और मन्त्री प्रवेश करते हैं।)

मन्त्री— अन्नदाता!

साँगा— मन्त्रिवर! यह वज्रपात कैसे सह्य हो ?

मन्त्री— अन्नदाता अपने को संभालिये।

साँगा— बहुत सँभालता हूँ। हृदय को पत्थर बना लिया है, पर जैसे उसमें असंख्य छिद्र हो गये हों। स्राव रोके नहीं रुकता। (विचलित होने का नाट्य करता है।)

मन्त्री— मनुष्य का कर्तव्य पत्थर से भी कठोर है, पृथ्वीनाथ! आप राजराजेश्वर, मनुष्यों में शिरोमणि हैं। आपका कर्तव्य और भी कठोर है।

साँगा— यह कर्तव्य-अकर्तव्य कुछ नही है, मन्त्री जी। जब मनुष्य जीवन और ससार कुछ भी सत्य नहीं है, तो कर्तव्य और अकर्तव्य, पाप और पुण्य भी सत्य नहीं है। मेरा जी इस ससार की असारता से विरक्त हो रहा है।

मन्त्री— महाराज, यह क्षणिक मोह है। विकारी शरीर कर्म-बन्धन से बँधा हुआ है। उससे उसका विस्तार नहीं, और यह अविकारी आत्मा निर्लिप्त है। शरीर-धरे का दड हमे भुगतना ही होगा। कर्तव्य करने मे ही हमारा कल्याण है।

साँगा— मन्त्री जी, इस ज्ञान-विज्ञान से आज सान्त्वना नहीं होती। वधू मीरा, सगमर्मर की प्रतिमा-सी, जड़ीभूता पड़ी है। उसके वर्तमान और भविष्य को आँखों के आगे घुमड़ता देख कर हृदय व्याकुल हो उठता है। फिर इस छलनामय ससार मे प्रवृत्त होने को जी नही चाहता।

मन्त्री— राजन्, यह परीक्षा है। हमारी महान् साधनाओं की यह भूमिका है।

साँगा— होगी।

मन्त्री— अवश्य। महाराणा सरदार और सामन्त वर्ग को कब दर्शन देगे ? सब दुखी और हताश हो रहे हैं।

साँगा— मुझे कुछ नहीं सूझता। जब आप चाहें मै सब की सेवा को तैयार हू।

मन्त्री— धन्य हो, महाराणा ! तो मुझे आज्ञा दीजिये।

साँगा— अच्छा, जाइये।

(मन्त्री का प्रस्थान)

साँगा— मन्त्री कहता है यह परीक्षा है। ओह! अग्नि-परीक्षा ! हृदय धक-धक कर के जल रहा है। प्राणों मे प्रचण्ड दावा उठ रही है। तत्व-ज्ञान उसमे झुलसा जाता है। अरे बचाओ। कोई बचाओ।

[शीघ्रता से महाराणी का प्रवेश। महाराणा को गिरते मे बचा लेती हैं।

महाराणी— महाराणा, यह क्या ? आज आपकी यह कैसी दशा हो रही है।

साँगा— हाँ।

महाराणी— संभलिए, महाराणा। आप ऐसा करेंगे तो हम अबलाएँ इस वज्रपात को कैसे सहेगी ?

साँगा— महाराणी !

महाराणी— प्रभो !

साँगा— सहारा दो।

महाराणी— (सहारा देती है) हृदय को समझाइये।

साँगा— (व्यथा का नाट्य करके) हृदय को ?

महाराणी— याद है महाराणा, उस दिन आपने कहा था। मेवाड़ की महाराणी को देश की चिन्ता से भी बढ़ कर कोई चिन्ता है। आज मैं पूछती हूँ मेवाड़ के महाराणा को प्रजा से बढ़ कर भी कोई प्यारा है ? मैं पूछती हूँ एक पुत्र के शोक में पागल होकर क्या महाराणा अपने असंख्य पुत्रों को भूल जायेंगे ? उत्तर दीजिये, महाराणा।

साँगा— (सम्हल कर) मै मोह मे पड़ा था, प्रिये !

महाराणी— उसे तोड डालना होगा, महाराणा। आप तो कर्तव्य के मार्ग पर चलने वाले पथिक है।

साँगा— मै समझ गया। अग्नि-परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का आलोक मै पा गया। लाओ, मेरी तलवार दो।

[तलवार लेकर शीघ्रता से प्रस्थान। महाराणी द्वार पर खड़ी होकर देखती हैं।]

[दृश्य परिवर्तन]

❀

मन्त्री— अवश्य। महाराणा सरदार और सामन्त वर्ग को कब दर्शन देगे ? सब दुखी और हताश हो रहे हैं।

साँगा— मुझे कुछ नहीं सूझता। जब आप चाहे मै सब की सेवा को तैयार हू।

मन्त्री— धन्य हो, महाराणा। तो मुझे आज्ञा दीजिये।

साँगा— अच्छा, जाइये।

(मन्त्री का प्रस्थान)

साँगा— मन्त्री कहता है यह परीक्षा है। ओह! अग्नि-परीक्षा! हृदय धक-धक कर के जल रहा है। प्राणों में प्रचण्ड दावा उठ रही है। तत्व-ज्ञान उसमे झुलसा जाता है। अरे बचाओ। कोई बचाओ।

[शीघ्रता से महाराणी का प्रवेश। महाराणा को गिरते मे बचा लेती हैं।

महाराणी— महाराणा, यह क्या ? आज आपकी यह कैसी दशा हो रही है।

साँगा— हाँ।

महाराणी— संभलिए, महाराणा। आप ऐसा करेंगे तो हम अबलाएँ इस वज्रपात को कैसे सहेंगी ?

साँगा— महाराणी!

महाराणी— प्रभो!

किसान— वृद्ध और बालकों को छोड़ कर आज गावों मे आदमी नहीं मिलेंगे। सब महाराणा की सेवा में गये है।

पथिक— एक साथ ही ?

किसान— महाराणा मुगलों से युद्ध करके उन्हें भारत से निकालना चाहते है। इसीलिये सबकी सैनिक सेवाओं की दरकार है।

पथिक— यहाँ सभी सैनिक हैं ?

किसान— यह मेवाड है, भैया। यहाँ का बच्चा बच्चा युद्ध करना जानता हे। यहाँ योद्धा ही पेदा होते है।

पथिक— वीर-भूमि मेवाड़ धन्य है।

किसान— शान्ति के समय हम लोग कृषि, व्यवसाय, व्यापार सभी कुछ करते हैं। युद्ध के समय सब काम बन्द करके तलवार से खेलते हैं। (वृक्ष की डाल मे लटक रही तलवार उतार कर घुमाता है, और हॉफने लगता है।) भैया, अब मै वृद्ध हो गया हूं। अब दम नही है।

पथिक— रहने दो, बाबा। यह बताओ, यह युद्ध कब होने वाला है ?

किसान— शीघ्र ही।

पथिक— कहाँ ?

नवाँ दृश्य

[स्थान— मेवाड के ग्राम का मार्ग । समय— दिन । एक वृद्ध किसान पेड़ की छाया मे विश्राम कर रहा है। एक पथिक उधर आता है । पथिक बहुत थका हुआ है । मेवाड़ी नही मालूम पड़ता । पहाडी मार्ग चलने के कारण उसका दम फूल रहा है ।]

पथिक— बाबा, थोड़ा जल पिलाओगे ?

किसान— लो, पियो । (झारी से जल पिलाता है ।)

पथिक— बड़ा मीठा और शीतल जल है, बाबा ।

किसान— पहाड़ी झरने का है ।

पथिक— आप कौन है ।

किसान— मै भील हूँ ।

पथिक— एक बात पूछ सकता हूँ ?

किसान— पूछो ।

पथिक— मै दक्षिण से आ रहा हूँ । यहाँ मैंने आकर देखा कि गाँवों मे स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ हैं । आदमी कही नहीं दिखाई पड़ते ।

किसान— आपका अनुमान सच है । आज कल गाँव आदमियों से खाली हो गये है ।

पथिक— किस लिये ?

किसान— वृद्ध और बालकों को छोड़ कर आज गावों में आदमी नहीं मिलेंगे। सब महाराणा की सेवा में गये हैं।

पथिक— एक साथ ही ?

किसान— महाराणा मुगलों से युद्ध करके उन्हें भारत से निकालना चाहते है। इसीलिये सबकी सैनिक सेवाओं की दरकार है।

पथिक— यहाँ सभी सैनिक हैं ?

किसान— यह मेवाड़ है, भैया। यहां का बच्चा बच्चा युद्ध करना जानता है। यहाँ योद्धा ही पैदा होते है।

पथिक— वीर-भूमि मेवाड़ धन्य है।

किसान— शान्ति के समय हम लोग कृषि, व्यवसाय, व्यापार सभी कुछ करते हैं। युद्ध के समय सब काम बन्द करके तलवार से खेलते है। (वृक्ष की डाल मे लटक रही तलवार उतार कर घुमाता है, और हॉफने लगता है।) भैया, अब मै वृद्ध हो गया हू। अब दम नही है।

पथिक— रहने दो, बाबा। यह बताओ, यह युद्ध कब होने वाला है ?

किसान— शीघ्र ही।

पथिक— कहां ?

किसान— स्थान तो नही बता सकता, पर होगा मेवाड़ के वाहर। बड़ा भयानक युद्ध होगा। जिन मुगलों ने दिल्ली के सुलतान को तहस-नहस कर दिया, जिनके भय से धरती कांपती है। उन्हीं मुगलों से राजपूतों की भिड़न्त होगी।

पथिक— तुम सब कुछ जानते हो, बाबा।

किसान— हाँ। मेरा वेटा भी तो गया है। (गर्व का नाट्य)

पथिक— आपका वेटा भी गया है ?

[एक वृद्धा स्त्री का प्रवेश

वृद्धा— ऐं, वेटा! कौन मेरे वेटे की चरचा चलाता है?

किसान— (रोकता है) ठहरो। आओ, देखो, ये परदेशी हैं।

वृद्धा— बटोही। तो यह अवश्य मेरे वेटे का हाल जानते होंगे। बताओ, वताओ, परदेशी— तुमने उसे देखा है। मेरे लाल को, मेरे प्राण को।— मेरा इकलौता वेटा है वह।

किसान— अरे, ठहरो। तुम्हे कुछ ध्यान भी है। ये उधर जा रहे हैं।

पथिक— मैं तो उधर जा रहा हूँ, माता जी।

...र जा रहे हैं ? उधर जा रहे है ?

प
वि
पथि
किस
पथिक
किसान-
पथिक—
कि गांवों मे कि
पड़ते।

किसान— आ

सियों से खाली हो ग... बटोही। उसका

पथिक— किस ... है। उसका हट्टा

शरीर तुम देखते ही पहचान लोगे। तुम लौटोगे न, पथिक। युद्ध समाप्त हो गया होगा। तुम उसे साथ लेते आना।

पथिक— अवश्य।

किसान— तुम तो सिर खपाने लगी हो। ये भूखे हैं। उसके लिये पूछा तक नहीं।

वृद्धा— मै अभी रोटी लाती हू। [जाती है]

किसान— बेटे का इसे बड़ा मोह है।

पथिक— माता-पिता को मोह तो होता ही है।

किसान— नहीं भैया। सब को नही। हमारे महाराणा को देखो। अभी अभी जवान पुत्र उठ गया। कितना बड़ा आघात था, पर देश की चिन्ता मे सब कुछ भूल गये।

पथिक— धन्य महाराणा!

किसान— नई पुत्रवधू के सुहाग का सिन्दूर पुछते देख कर भी महाराणा कर्तव्य को नही भूले।

पथिक— सुना है, प्रसिद्ध भक्त-शिरोमणि मीरा भी तो मेवाड के किसी राजकुमार को ब्याही गई हैं।

किसान — वही तो, वही तो। बेचारी पर भयानक वज्रपात हुआ।

पथिक— मीरा विधवा हो गई? यह क्या सुनता हूँ? भगवन्! भक्तों को यह दुःख! विश्वास नहीं होता।

किसान— विश्वास करने जैसी बात नहीं है, परन्तु सत्य है।

पथिक— राम-राम। कलि-काल है। कुछ कहा नहीं जाता। (आँखें मूँद कर ध्यान करता है) अब समझा, इसमें कोई बड़ा उद्देश्य है। क्षमा करो, प्रभो। क्षमा!

[आकाश की ओर हाथ जोड़ता है।]

(दृश्य परिवर्तन)

❀

दसवाँ दृश्य

[स्थान— चित्तौड़ का राजभवन। समय— दिन का तीसरा पहर। मीरा अनमनी बैठी है। महल का शेष भाग सूना पड़ा है।]

मीरा— इतनी छोटी सी उम्र मे सब कुछ देख लिया। सुनहले-रुपहले स्वप्नों की झाँकी, लाड प्यार की दुनियाँ, स्वर्ग का सुख और मर्त्य की पीडा। पर किसी मे सार नहीं। दादा जी गये, पिता जी भी पहुँच गये। मां, मा। तुम भी चली गईं। स्वामी बन्धन काट कर चले गये। मीरा अकेली आई थी। मीरा अकेली है। एक एक करके बाँधे थे वे सब बन्धन खुल गये। उन्मुक्ति का अवकाश चारों ओर फैल रहा है। आज मातम के दिन, जब सारा मेवाड़ शोक मे डूबा

है। जब युद्ध में पराजय को पाकर श्वसुर जी न जाने कहाँ चले गये, जब राजपूतों की शक्ति बिखर गई, जब आँखों के सपने लुट गये, एक नीरव निर्विकार उदासी छा रही है, तब मीरा हँसे या रोवे। कुछ समझ में नहीं आता?

(माथे पर हाथ टेक कर सोचने लगती है। दासी का प्रवेश। जयमल के आने की सूचना देती है। साथ ही योद्धा-वेश में जयमल का प्रवेश।)

जयमल— बहन, मीरा।

मीरा— (दौड़ती है) भैया, भैया जी।

[जयमल मीरा को गले लगाता है।

जयमल— बहन, तुम सब सुन चुकी होगी ?

मीरा— सुन चुकी हूँ।

जयमल— कनवा के युद्ध में चाचा जी खेत रहे। हमारे अधिकाश सामन्त वीरों ने जाकर वहाँ स्वर्ग बसाया है। (आकाश की ओर इशारा करता है) कैसा था वह युद्ध, बहन, परमात्मा के अभिशाप की तरह, जिसे अन्त तक विजय होकर हमने खो दिया। भारत का भविष्य आज अन्धकारमय हो गया है। धीरज छूट रहा है।

मीरा— मुझे तो आपके विश्वास पर भरोसा था। इस निरीहावस्था मे, भैया, उसी दृढ़ विश्वास के दो शब्द आपके मुँह से सुनना चाहती थी।

जयमल— आज उस विश्वास की जड़ हिल उठी है। तुम्हीं उसे दृढ़ कर सकती हो, मीरा।

मीरा— यह बात है, भाई! तो सुनो— मै केवल यही समझ पाई हूँ कि मनुष्य को भगवान् की इच्छा के प्रति आत्म-समर्पण कर देना चाहिये। भक्त की बिगडी को वे स्वयं बनाते हैं। वे दीनबन्धु अपने जनों के लिये क्या नहीं करते।

जयमल— वही होगा, बहन। अन्तिम क्षण तक तुम्हारे ये शब्द मुझे याद रहेंगे। यों भी इस शरीर पर जयमल ने अपना अधिकार कभी नहीं समझा।

मीरा— यह क्या मैं नहीं जानती।

जयमल— मुझे इस प्रतिज्ञा से बहुत बल मिल रहा है। दो क्षण पहले निराशा ने मुझे जर्जर कर डाला था। अब आशा बँध रही है। किसी महान् भविष्य की आभा झलक रही है।

[कंचन का आना, वह कुछ घबड़ाई हुई है]

कंचन— कुछ सुना है, बाई जी!

मीरा— उसके मुँह की ओर देखती है।

जयमल— क्या है कचन ?

कचन— कुँवर जी, आपने कुछ नहीं सुना है ?

जयमल— नही, मै तो सीधा बहन मीरा से मिलने चला आया था।

मीरा— कचन, बता तो सही।

कचन— (कान मे कहती है)

मीरा— ससुर जी अब नही है ?

जयमल— क्या, महाराणा।

मीरा— (रोने लगती है) मेरा दुर्भाग्य।

जयमल— नही, ऐसा नही हो सकता। मै देखता हूँ।

[शीघ्रता से जाना, नेपथ्य में कुहराम शुरू होता है।]

मीरा— यह सब क्या हो रहा है ?

[महाराणी के मन्दिर की ओर जाती है। कचन पीछे पीछे जाती है।]

(परदा)

❀

अंक तीसरा

❀❀❀

दृश्य पहला

[स्थान— चित्तौड़ मे मीरा के प्रासाद का उद्यान । समय— प्रभात । रत्ना उद्यान के एक एकांत वृक्ष के नीचे बैठी है । सूर्य का प्रकाश ओस से भीगी पत्तियों का शृगार कर रहा है । पक्षी कलरव करते हैं । आकाश स्वच्छ है । हवा धीरे धीरे डोल रही है । सब ओर ताजगी और शाति है ।]

रत्ना— अरे, कितने दिन बीत गये ? कल की सी बात लगती है । बाई जी के साथ मै चित्तौड़ आई थी । मन मे गुदगुदी थी । आँखों में नशा था । हृदय मे उल्लास था । वह सब कहाँ गया ? कौन छीन ले गया उसे ? अगर इतनी जल्दी

वञ्चित कर देना था तो उसकी आवश्यकता ही क्या थी? (कोयल कूकती है) कोयल, तू गाती है। तू उस दिन भी इसी प्रकार गाती थी। तू फिर भी इसी तरह गाती रहेगी। तेरी कूक में वही मादकता है। परन्तु मेरे मन का स्वाद बदल गया है। आज तेरी इस आलाप से हृदय में सिहरन नहीं होती। मन में हिलोरें नहीं उठतीं।

[उठ कर इधर उधर टहलती है। फिर जाकर एक वृक्ष के पास फूल चुनने लगती है। एक फूल हाथ से छूट कर धूल में जा गिरा है। ओस से भीगा होने से मिट्टी मे सन जाता है।

रत्ना— (गिरे हुए फूल की ओर देख कर) अपना अपना भाग्य। हमारी बाई जी क्या किसी फूल से कम थीं? कली से भी अधिक कोमल, किरण से भी अधिक सुन्दर, मधु से भी अधिक मधुर, तारिका से भी अधिक शुभ्र। कौन जानता था विधाता का यह निठुर विधान? स्फटिक का वह मन्दिर आज खण्डहर हो गया। राव दूदा का वह सञ्चित दुलार, रानी चदाबाई की ममता का प्रसार, युवराज भोजराज के प्रेम का शृंगार, महाराणा के अरमानों की निधि? बहन मीरा, दुर्भाग्य का दुर्जय लेख। (आँसू बहाती है)

[कंचन का प्रवेश

कंचन— रत्ना, मै देखती हू तू भी आज कल कविता करने लगी है।

रत्ना— (आँसू पोछ कर) कविता ?

कंचन— तू रो-रो कर फूलों से बातें करती है। यह कविता नहीं तो क्या है ? तू यहाँ आकर भूल जाती है कि क्यों आई थी।

रत्ना— अगर भूल सकती तो क्या ही अच्छा होता।

कंचन— बाई जी प्रतीक्षा कर रही हैं। पूजा के लिये फूल तू अभी तक नहीं चुन पाई ?

रत्ना— मैं यही तो सोचती थी कि पूजा और फूल, इनका बाई जी के जीवन के साथ कैसा घनिष्ट संबंध हो गया है।

कंचन— क्या आज से ?

रत्ना— हाँ हाँ, वही तो। बचपन के इन साथियों ने उनकी सारी जीवन-चर्या को आच्छादित कर लिया।

कंचन— किन्तु रत्ना, यह तो दुःख की बात नहीं।

रत्ना— तो क्या आनन्द की बात है ? इस अवस्था मे हमारी बाई जी को तपस्विनी बना दिया है। उनकी देह में आभूषण नहीं हैं। माथे पर कुंकुम नहीं है। पैरों मे जावक

नहीं है। चीर और चूनरी छोड़ कर वे शुभ्र-वसना पुजारिणी की तरह रहती हैं। मेरा तो उन्हें देख कर हृदय फटता है।

कचन— परन्तु इसमें किसका चारा है? क्या भगवान् को यही अभिष्ट नहीं है? भगवान् की इच्छा के ऊपर भी किसी की इच्छा है?

रत्ना— नहीं। यह मै कब कहती हूँ?

कचन— और भगवान् की इच्छा में भक्तों का कल्याण निहित है, क्या हम इसको नहीं मान सकतीं?

रत्ना— हो सकता है।

कंचन— तो बहन, इसमे दुख की कौन सी बात है? बाई जी को देखो। किस प्रकार सब कुछ सहन करती हैं! मुझे तो उनकी दृढ़ता देख कर ही भगवान् पर विश्वास होता है।

[पास के मन्दिर मे पूजा की घंटी बजती है।]

रत्ना— आओ, चलो। फूल ले चलें। बाई जी मन्दिर मे पधार गई हैं।

[दोनों जाती हैं।

(दृश्य परिवर्तन)

❀

दृश्य दूसरा

[स्थान— चित्तौड, मीरा का निवास। समय— मध्याह्न। एक दम सादगी और पवित्रता का साम्राज्य है। चौक मे तुलसी का पौधा है। वहाँ चन्दन, रोली, अक्षत पडे हैं। दालान में दो तीन आसन बिछे हैं। एक सफेद साडी पहने धीरे-धीरे मीरा आकर आसन पर बैठ जाती है। उसके पीछे-पीछे कचन और रत्ना भी आती हैं। वे भी बैठ जाती हैं।]

मीरा— रत्ना बहन, कल मै तेरे संग्रह को देख रही थी। मुझे विश्वास नहीं होता कि वे भजन कब और कैसे मेरे मुँह से निकले?

रत्ना— तो आप अनायास ही किस प्रकार गाने लग जाती है?

मीरा— कैसे कहूं? जब मै गोपाल के सामने पहुँचती हूँ तो हृदय उच्छ्वसित हो उठता है। वाणी तरल हो जाती है। गीतों का प्रवाह बह निकलता है।

रत्ना— हाँ, इस वेग से कि मैं लिख नहीं पाती हूँ।

मीरा— जी में आता है मै सदा गोपाल के सामने गाती रहूँ। नाचती रहूँ। अपनी भक्ति से उनका शृगार करती रहूँ।

रत्ना— आप धन्य हैं, जो बड़े से बड़ा सांसारिक दुख भक्ति-प्रवाह मे भूल जाती हैं।

मीरा— मेरी क्या बिसात है? यह तो गोपाल की कृपा है।

कचन— अवश्य। नहीं तो, रानी अजबकुँवरि को देखा था। कैसी व्याकुल पड़ी हैं? राणा रत्नसिह के स्वर्ग-वास ने उन्हे पागल बना दिया है।

रत्ना— हाँ, बाई जी! आपकी देवरानी तो आप ही की अनुयायिनी हैं, परन्तु वे ऐसी व्याकुल और अधीर क्यों हो रही हैं? उनके ऊपर तो आपसे अधिक सकट नहीं पड़े।

मीरा— जो साधना की सीढ़ी पर जितना ही ऊँचा चढ़ जाता है सांसारिक माया-मोह उसे उतने ही कम सताते हैं। बहन अजबकुँवरि ने भक्ति के पथ पर अभी पैर धरा ही है। भक्ति के ससार मे उनके पैर अभी जम नहीं पाये हैं। इसीलिये उनकी मनोदशा अभी ऐसी है। मैं स्वय भी क्या विचलित नहीं होती? कभी कभी मेरा भी असहाय हृदय नारी का एक दुर्बल हृदय बन जाता है और सारी आस्था पत्ते की तरह डोलने लगती हैं।

कचन— तब?

मीरा— तब बचपन की भक्ति के संस्कार काम आते हैं। भगवान् की कृपा सहारा देकर मुझे उठाती और बल देती है। कीर्तन, भगवद्-चर्चा और सत-समागम से भी बहुत बल मिलता है।

रत्ना— जीवन के इस अभाव को क्या आप बिलकुल भूल जाती हैं?

मीरा— सर्वस्व रूप गोविन्द के मिल जाने पर फिर अभाव किसका? जब मैं अपने को उन्हीं वृन्दावन-बिहारी, सर्वेश्वर की सहचरी समझने लगती हूँ, जिन में सारी विभूतियों का निवास है, फिर मै किसके लिये अभिलाषा करूँ? भक्ति मे जो सारी अभिलाषाओं का अवसान कहा है— वह बिलकुल सत्य है।

[दासी का प्रवेश

दासी— ड्योढ़ी पर एक महात्मा पधारे हैं।

मीरा— उन्हें इच्छा-भोजन करा कर विश्राम-गृह में ठहरा दो।

दासी— वे कहते है, मुझे भगवद्-भजन रूपी भोजन चाहिये।

मीरा— तो सध्या समय गोपाल-मन्दिर मे पधारने को कह देना।

दासी— किन्तु बाई जी, वे द्वारावती जा रहे है। आपसे इसी समय मिलना चाहते है।

मीरा— इसी समय। अच्छा, तो यहीं लिवा लाओ।

[दासी जाकर एक वैष्णव साधु को ले आती है।

साधु— (मीरा का रचा हुआ एक पद गाता हुआ आता है)

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मै गोविद पाऊँ।

इन नैनन मेरा गोविद बसता, डरती पलक न नाऊँरी।

रगमहल म बना है झरोखा, तहाँ मे झाँकी लगाऊँरी।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार-बार बलि जाऊँरी।

जो मै० ॥

जय जय गोविद, जय जय गोविद।

मीरा— (खड़ी होकर) मीरा दासी महात्मा जी के चरणों मे प्रणाम करती है। (झुकती है)

साधु— जिसके पद इस प्रकार भक्ति-रस मे डूबे हुए हों, उसके चरणों की रज (नीचे झुक कर पृथ्वी पर उँगली लगाता है।)

मीरा— नहीं-नही, महात्मा जी यह क्या करते हो ? मै तो भगवद्-भक्तो की अकिंचन दासी हूँ। (पीछे हटती है)

साधु— कौन कहता है ? ऐसा अलौकिक भक्ति-प्रवाह किस की वाणी में है ? आज मेरा जीवन धन्य हुआ।

मीरा— महात्मा जी, मै कभी इस योग्य नही हू।

साधु— आप सब प्रकार योग्य है। मेरा विश्वास है, भगवान् ने आपको ससार मे पापियों के तारने के लिये भेजा

है। आपकी वाणी मे जो अमृत-रस है, वह इस संसार का नहीं है। आप पृथ्वी पर स्वर्ग की अनुभूति करने आई हैं।

मीरा-- मुझे लज्जित न कीजिये, महाराज। मै स्वयं पाप-पक में लिप्त हूँ। महात्माओं के सत्संग से और गोविंद की कृपा से मै थोड़ा-बहुत भगवान् का नाम लेना जानती हूँ।

साधु— आप जैसे भक्तों को ऐसी ही विनय शोभा देती है।

मीरा— विराजिये भगवन्।

साधु— (आसन पर बैठता है।)

मीरा— कहिये आपकी क्या सेवा करूँ ?

साधु— केवल आपके दर्शन की अभिलाषा थी। आपके भजन सारे देश मे गाये जाते हैं। असंख्य पापी उन्हे गा गा कर भगवद्-भक्ति का रस पीते हैं। यदि एक पद आपके मुँह से सुन सकूँ तो कृतार्थ हो जाऊँ।

मीरा— मैं तो भगवान् के भक्तों के चरणों की रज हूँ। मुझसे जो कुछ सेवा हो मैं तैयार हूँ।

(गाती है)

आली री, मोरे, नैनन बान पड़ी।
चित्त चढी मोरे माधुरी मूरत, उर बिच आन गड़ी।
कब की ठाढी पंथ निहारूँ; अपने भोन खड़ी।

कैसे प्रान पिया विन राखूँ, जीवन-मूर जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ विकानी, लोग कहैं बिगडी।
आली री, मोरे० ॥

साधु— धन्य हो। धन्य हो। बाई जी, आप इस कलिकाल मे भक्ति की मदाकिनी है। इच्छा होती है जीवन भर इस अमृत-रस का पान करता रहू।

(आँखे बंद कर लेता है।)

मीरा— महात्मन्, अब क्या आज्ञा है?

साधु— कुछ नही, कुछ नही। मुझे आशा से अधिक मिला। जो साधु-सन्तों मे भी नहीं पाया, जो चित्रकूट, प्रयाग और ब्रज में नहीं पाया, वह चित्तौड़ के राज-प्रासाद मे पा लिया। इसे जीवन-पर्यन्त क्या कभी भूल सकूँगा?— बस अब आज्ञा दीजिये। (हाथ उठाता है)

मीरा— दासी मीरा का नमस्कार।

(हाथ जोडती है। एक ओर से साधु का जाना और दूसरी ओर से ऊदा बाई का प्रवेश।)

ऊदाबाई— भाभीजी। आज इस समय आना पड़ा। आपको कष्ट तो न होगा?

मीरा— एक दिन आकर फिर दूसरे दिन न आने से कष्ट अवश्य होता है।

ऊदा— रोज आने से आपके भगवद्-भजन और संत समागम में विघ्न जो होगा।

मीरा— उसमें विघ्न पड़ेगा इसी भय से नहीं आतीं क्या ?

ऊदा— विषयान्तर तो विघ्न ही है।

मीरा— विषयान्तर की आवश्यकता ? क्या भगवद्-भक्ति ऐसी वस्तु नहीं, जिसकी तुम्हें भी जरूरत हो ?

ऊदा— जरूरत होने से ही हर वस्तु अपनाई तो नहीं जा सकती।

मीरा— खैर, आओ बैठो।

ऊदा— (बैठ कर) भाभी जी, मैं कुछ कहने आई हूँ।

मीरा— कहो।

ऊदा— यह पिता जी का समय नहीं है, भैया भोजराज का समय नहीं है, भैया रत्नसिंह का भी समय नहीं है, यह राणा विक्रमाजीत का समय है।

मीरा— बाई जी, समय किसी का नहीं होता। समय गोविंद का है।

ऊदा— भैया विक्रमाजीत आज राणा है।

मीरा— है तो।

ऊदा— पिता जी का, हम लोगों के ऊपर वात्सल्य था। वे हमारे अनुचित-उचित को देख कर भी नहीं देखते थे। भैया रत्नसिंह देवता पुरुष थे। राणा विक्रमाजीत को यह नहीं सुहाता। वे नहीं चाहते कि आप सर्व-साधारण के सामने कीर्तन मे भाग लें या सत-मण्डली में भगवद्-चर्चा करें।

मीरा— बहन, परन्तु मै तो राणा की इच्छा से बँधी नही हूँ। मेरे लिए एक ही इच्छा मान्य है और वह है गोपाल की इच्छा।

ऊदा— भगवान् राजराजेश्वर हैं, उनकी इच्छा से पहले राजा की इच्छा भी तो कुछ है न?

मीरा— राजा, समय और परिवार की इच्छा मीरा के भगवद्-भजन मे कभी बाधक नहीं हुई। यदि हो तो मीरा के लिये वह अमान्य होगी।

ऊदा— भाभी, ऐसा न कहो। मेरा अनुरोध मानो। मै आपसे प्रार्थना करती हूँ।

मीरा— यह कैसे हो सकता हे? भगवद्-भक्ति को छोड़ कर मै कैसे जी सकती हू?

ऊदा— भक्ति मत छोड़ो। सर्वसाधारण के सामने कीर्तन छोड दो। सब तरह के पुरुष वहाँ होते है, भाभी।

मीरा— पर बाई जी, मेरे लिये गोविंद को छोड़ कर संसार में कोई पुरुष नहीं है। मै तो केवल उन्हीं को पुरुष मानती हूँ।

ऊदा— आप तो पहले भी इसी तरह कहती थीं, परन्तु...

मीरा— राणा जी को कह देना। वे इसमें अपमान और दुख न मानें। जो अमृत मैने पी लिया है यदि वे भी उसे पी पाते तो उनकी दृष्टि की यह विषमता दूर हो जाती।

ऊदा— अच्छा, कह देखूँगी।

जाती है।

(दृश्य परिवर्तन)

❀

दृश्य तीसरा

[**स्थान**— चित्तौड मे गोपाल-मन्दिर। **समय**— सायङ्काल। अनेक स्त्री-पुरुष उपस्थित हैं। मीरा, रत्ना और कंचन आती हैं। संगीत-वाद्य शुरु होते हैं। मीरा करताल हाथो मे उठा लेती है। अन्य स्त्रियाँ भी वैसा ही करती है। संकीर्तन प्रारम्भ होता है। मीरा का प्रसिद्ध गीत गाया जाता है। सब नाचती और करताले बजाती हैं।]

गीत

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई।
छाड़ि दई कुल की कानि कहा करै कोई।
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक-लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई आनद फल होई।
भगति देखि राजी भई जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर तारो अब मोई।

[दर्शक भावावेश नाट्य करते हैं। गाना समाप्त होने पर दर्शक एक-एक करके जाते हैं। मीरा मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर बैठती है।

मीरा— भगवन्, जिस सकीर्तन में मेरा रोम रोम नाच उठता है, जिसमे मुझे स्वर्गीय अनुभूति प्राप्त होती है, जिसमें सम्मिलित होकर हृदय शान्त और मन ब्रह्मानन्द मे लीन हो जाता है, वही सकीर्तन मेरे देवर राणा जी को क्यों नहीं सुहाता ? यदि यह कलक का द्वार है, यदि यह पाप का पथ है तो प्रभो। मुझे आदेश दो मै लौट जाऊँ, अपने उसी जीवन मे जहाँ मोह और मत्सर का, ईर्ष्या और द्वेप का अखण्ड

साम्राज्य है। (मूर्ति के चरणों में माथा झुकाती है, फिर बैठ जाती है) उस दिन, महान् संकट के समय, आपने जिस मार्ग पर चलने का संकेत किया था मीरा उसी पर चल रही है। आप को वही इष्ट है तो आपकी दासी अनिष्टों की परवा न करेगी। उसे विश्वास है, आपका इष्ट-पथ कभी पाप-पंकिल नहीं हो सकता।

[पुनः प्रणाम करके बाहर निकलती]

[दृश्य परिवर्तन]

❀

दृश्य चौथा

[स्थान— चित्तौड, सरोवर का तट। समय— प्रातःकाल।
लोग सन्ध्या-वन्दन, स्नान-पूजन कर रहे हैं। उस भीड़ में
साधु-सन्यासी, गुसाईं-ब्राह्मण, सेठ-साहूकार और
राजपूत सभी हैं।]

एक व्यक्ति— चित्तौड़ आज कल दूसरा वृन्दावन हो गया है।

दूसरा व्यक्ति— यदि जमुना और वहती होतीं।

गुसाईं— भक्ति की जमुना तो वह रही है।

साधु— भक्ति का ऐसा प्रवाह तो वृन्दावन में भी सब कहीं नहीं है।

सेठ— यह सब हमारी बाई जी का प्रताप है। मेड़ता मे यही रग था। अब चित्तौड़ मे वही आनन्द है। भला यह नाना मूर्तियॉ यहॉ कहॉ दिखाई देती। (हाथ से सबकी ओर सकेत करता है)

गुसाई— सेठ जी, आपका निवास मेड़ता मालूम होता है।

सेठ— आपका अनुमान ठीक है। किन्तु अब तो यहॉ से मेड़ता जाने को जी नही चाहता।

गुसाई— मुझे भी अब तक चला जाना चाहिये था, परन्तु जी कहता है आज का कीर्तन और देख लूॅ, आज का और देख लूॅ। इसी तरह पन्द्रह दिन हो गये।

साधु— किन्तु यह प्रवाह तो अब बह निकला है। केवल चित्तौड से नही समायेगा। देश-देशान्तर को डुबा कर रहेगा।

ब्राह्मण— महात्मा जी यथार्थ कहते हैं। मै कुम्भ पर हरिद्वार गया था। वाई जी के पदों ने वहॉ कृष्ण-भक्ति की ऐसी धारा बहा दी कि लोग जहॉ-तहॉ उसी मे स्नान करते रह गये। हर की पैड़ी तक पहुँचे ही नही।

राजपूत— किन्तु महाराज, क्या भक्ति मे पात्र-अपात्र का भेद नही ?

ब्राह्मण— आपका तात्पर्य नहीं-समझा।

राजपूत— ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में अभी तक साधु-महात्माओं और ऋषि-ब्राह्मणों का ही अधिकार था। स्त्रियों और कुल-वधुओं का इस क्षेत्र में आना कहाँ तक ठीक है ?

साधु— मै कुछ कहूँ ?

राजपूत— कहिये।

साधु— भक्ति और ज्ञान पर सब का समान अधिकार है। इससे समन्वित पुरुष हो या स्त्री, बाल हो या वृद्ध, ब्राह्मण हो या शूद्र, तपस्वी हो या चाण्डाल, समान भाव से पूज्य है।

[सुखपाल ब्राह्मण हाथ उठाये आता है।]

सुखपाल— सुनो जी, सुनो।

सब— (उत्सुकता से देखते हैं)

सुखपाल— आश्चर्य की बात है।

गुसाई— क्या ?

सुखपाल— (चारो ओर देख कर दबे स्वर से) राणा जी ने बाई जी को हरिकीर्तन से बरजा था।

गुसांई— शायद उन्होंने राणा जी की बात मान ली होगी।

ब्राह्मण— न मानती तो क्या करती ? आखिर एक दुर्बल अबला नारी।

सुखपाल— नहीं जी, बाई जी ने साफ मना कर दिया। कह दिया मेरे राणा श्रीगिरधर गोपाल हैं। उनकी आज्ञा के ऊपर किसी की आज्ञा मै नही मान सकती।

गुसांई— धन्य हो। यह है लगन।

सुखपाल— राणा जी ने बहुत अनुनय-विनय की पर सब अकारथ।

गुसाई— फिर ?

सुखपाल— राणा जी लाल-पीले हुए। उन्होंने क्रोध मे बड़ी भयानक बात कर डाली।

सब— वह क्या ? वह क्या ?

सुखपाल— उत्तेजित होने का समय नही। उन्होंने निर्माल्य मे छिपा कर एक विषधर सर्प बाई जी के पास भेज दिया।

सब— सर्प। सर्प॥

सुखपाल— हॉ।

गुसांई— और उसने बाई जी को डस लिया ? यही, कहो न। अन्याय, अत्याचार। छोड़ो ऐसे देश को।

सब— छोड़ो ऐसे राज्य को।

गुसांई— किसी वन में चल कर रहें।

सुखपाल— परन्तु, भगवान् की कृपा से बाई जी को वह फूलों की माला सा निर्विष हो गया। उसे पहन कर वे गोपाल के सामने झूम-झूम कर गा रही हैं।

गुसाई— सुनो, कान खोल कर भक्ति का चमत्कार सुनो।

सुखपाल— विश्वास न हो तो मन्दिर मे जाकर देख लो। मै अपनी आँखों से देख आया हूं।

ब्राह्मण— भगवन्, आपकी माया अपार है।

[एक एक करके लोग भागते हैं।]

[दृश्य परिवर्तन]

❀

दृश्य पाँचवाँ

[स्थान— गोपाल मन्दिर। समय— प्रभात। मन्दिर के द्वार पर भीड़ एकत्र है। कोलाहल बढ रहा है। सब लोग राणा विक्रमाजीत पर क्रोधित हो रहे हैं। सिपाही भीड को हटाने का यत्न करते हैं, पर लोग उनकी बात नही मानते। कोई कोई उत्तर भी दे देते हैं। परिस्थिति भीषण होती जा रही है। धीरे-धीरे रत्ना आती है। वह हाथ हिला कर लोगों को शान्त रहने का इशारा करती है।]

रत्ना— बाई जी, आप लोगों के आचरण से दुखी हैं।

सब— हम बाई जी के मुँह से सुनना चाहते हैं।

रत्ना— उनकी इच्छा है आप शान्त रहें।

सब— उनसे कहो एक क्षण के लिये हमारे सामने आ जायँ। हम शान्त हैं।

रत्ना— अच्छा, मै निवेदन करती हूँ।

[प्रस्थान, धीरे-धीरे मीरा सामने आती है। सब जय-जयकार करते हैं।

मीरा— इतनी सी बात से आप लोग उत्तेजित हो जाते हैं। भक्ति की परीक्षा का तो यह श्रीगणेश है। हमें इससे भी भयकर बाधाओं को सहन करने के लिये तैयार रहना चाहिये।

सब— किन्तु बाई जी यह अनुचित है।

मीरा— हमारी दृष्टि भगवान के चरणों पर रहनी चाहिये, अनुचित-उचित पर नही। वे स्वय देखने वाले है। उनकी कृपा-कोर से पत्थर भी पानी-पानी हो जाते हैं।

एक व्यक्ति— वह विषधर कहाँ है ?

मीरा— आप क्या करेंगे ?

दूसरा व्यक्ति— हम देखना चाहते हैं।

मीरा— भगवान् के प्रसाद के साथ विषधर भी मुझे ग्राह्य है। उसका मैंने हार बना लिया है।

[गले मे सर्प दिखाई देता है। दर्शक भयभीत होते हैं। परन्तु वह शीघ्र ही फूलों की माला मे बदलता दिखाई पड़ता है।]

सब— देखो, देखो, कैसा चमत्कार है?

एक व्यक्ति— यह भक्ति की महिमा है।

दूसरा व्यक्ति— यह भगवान् की कृपा है।

तीसरा व्यक्ति— बोलो भगवान् कृष्ण की जय।

[सब भगवान् कृष्ण की जय-जयकार बोलते हैं। मीरा मन्दिर मे लौट जाती है। सब एक एक कर निकलते हैं।

[दृश्य परिवर्तन]

❀

दृश्य छठा

[स्थान— चित्तौड़, मीरा का महल। समय— दोपहर दिन। मीरा आसन पर बैठी है। कुछ गुनगुना रही है। पास में रत्ना और कचन बैठ कर धीरे-धीरे बात-चीत कर रही हैं।]

कचन— हमें सावधान रहना चाहिये।

रत्ना— जरूर।

कंचन— भगवान् के नाम पर बाई जी से कुछ भी कराया जा सकता है।

रत्ना— यह तो सदा से है।

कचन— प्रबध करना होगा। ड्योढ़ी से कोई भीतर न आये।

रत्ना— न कोई वस्तु सीधी उनके पास पहुचे।

मीरा— तुम लोग क्या सलाह कर रही हो? जब हमें स्वय गोविद का सरक्षण मिल गया है तो चिन्ता किस बात की? जाओ कचन, ड्योढ़ियों का पहरा उठा दो। दिन-रात द्वार खुला रहने दो। कह दो, किसी के आने मे रोक-टोक न की जाय। जाओ, विलम्ब न करो।

[कचन जाना चाहती है।]

रत्ना— किन्तु, बाई जी!

मीरा— व्यर्थ है, रत्ना, तुम्हारा भय। सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर को स्वामी मान कर क्या पामर मानव का भय करूँगी? तुम्हे अब भी सशय है? विषधर को फूलों की माला-सा सुखद होते कहीं देखा है? भगवान कृष्ण की कृपा के बिना क्या यह सभव है?

[रत्ना प्रभावित होकर सिर झुकाती है। कचन द्वार की ओर जाती है और लौट कर आती है।]

सुखपाल— अहोभाग्य, इसी बहाने उन तत्वदर्शी महात्मा के दर्शन तो होंगे।

मीरा— वे इस समय चित्रकूट में विराजमान हैं।

[पत्र देती है।

सुखपाल— मुझे पता है।

मीरा— शीघ्र ही इसका उत्तर लाना होगा।

सुखपाल— समझ गया।

(दृश्य परिवर्तन)

❀

दृश्य सातवाँ

[स्थान— चित्तोड, राणा विक्रमाजीत का आवास।

समय— सायङ्काल। राणा विक्रमाजीत जल्दी २ टहल रहे हैं। आँखे स्फुलिङ्ग की तरह जल रही हैं।]

विक्रमाजीत— सीसोदिया कुल की राजरानियाँ अब नर्तकी बनेंगी। कैसा अंधेर है ?

[ऊदाबाई का प्रवेश

ऊदाबाई— वही क्रोध। अभी आप शान्त नहीं हुए ?

विक्रमा— शान्त। मै पुरुष हू, ऊदा। मै बाप्पारावल का वशधर, मेवाड़ का राना हूं। इस कुल को अपनी क्षत्राणियों का गौरव है। उन असूर्यपश्या देवियों की कीर्ति को मै इस प्रकार कलंकित होते देख नहीं सकता।

ऊदा— उनकी कीर्ति अजर अमर है और रहेगी।

विक्रमा०— क्या इसी प्रकार नर्तकी और गायिका बन कर? सर्वसाधारण के सामने रास-क्रीड़ा करके?

ऊदा— परन्तु उनमे और इनमे अन्तर है।

विक्रमा०— ये विधवा है यही न?

ऊदा— हाँ! उन्हे कौनसा सहारा है? चढ़ती उम्र मे यह वज्र-प्रहार। उनके सामने जीवन का विस्तृत दिगन्त सूना पड़ा है। यदि वे भगवद्-भक्ति के आसव को पीकर एक बार कुल की मर्यादा का उल्लघन भी करती हैं, तो क्या क्षम्य नही है?

विक्रमा०— वे राणा साँगा की पुत्रवधू है। विधवा होकर भी वे उस वश की मर्यादा से बँधी हैं, जिसकी कीर्ति से भूमण्डल आलोकित हो रहा है।

ऊदा— आप उत्तेजित है। आप पहले शान्त हो जाँय।

विक्रमा०— मै शान्त हू। मुझे तुम समझाओ, ऊदा, बहन। क्या मेरा यह कथन अनुचित है?

ऊदा— भाई, आप मर्यादा के मोह मे क्यों पडे है? फिर उसके लिये जिसे स्वय भगवान् ने कुल-मर्यादा के बन्धन से मुक्त कर दिया है। आप इस दृष्टि से क्यों नही देखते कि अब उनका सम्बन्ध मेवाड़ के राजकुल से नहीं विश्व के भक्त-कुल से है। राणा राज्य करने के लिये स्वतन्त्र है, भक्त भक्ति करने के लिये उसी प्रकार स्वतन्त्र होना चाहिये।

विक्रमा०— भूलती हो ऊदा, मै कस नहीं हूँ जो भगवद्-भक्ति का विरोध करूँ। मै तो उस नाच गाने का विरोधी हूँ जो आध्यात्मिक नहीं वासनात्मक प्रवृत्तियों को जगाने वाला है। देखती नही हो मन्दिर मे भक्तों की भीड़। क्या यह सब भक्त ही हैं, रूप-रसिक नही?

ऊदा— दूसरों की मै नहीं जानती, पर भाभी की भक्ति वासनात्मक है यह मै स्वीकार नही कर सकती।

विक्रमा०— यदि उन्हें भक्ति ही करनी है, तो कौन रोकता है। एकान्त मे वे रात-दिन अपनी साधना मे लगी रह सकती है। यदि वे सर्व-साधारण के सामने कीर्तन करना बन्द कर दें तो मै उनके चरणों पर अपना माथा रखने को तैयार हूँ। वे उस एकान्त भक्ति को क्यों नहीं पसन्द करतीं?

ऊदा— उनसे तो यह आशा रखना वृथा है। मै अनेक बार ऐसी प्रार्थना कर चुकी हूँ।

विक्रमा०— तो मुझे शासक का कर्तव्य पालन करने दो, ऊदा! बिना शासन-दण्ड के यह तूफान शान्त होने का नही है।

ऊदा— राणा जी को अधिकार है।

[जाती है।

विक्रमा०— मै अपने अधिकार का पालन करूँगा। अपने विश्व-वद्य-वश की मान-मर्यादा में मै कलक लगते नही देख सकता।

[दयाराम पाडे का प्रवेश।

दयाराम— दुहाई राणा जी की, मुझे बचाइये।

विक्रमा०— क्यों पाडे, क्या हुआ?

दयाराम— पाप, पाप— महान पाप किया है मैने। राजरानी मीरा को मैने इन्ही हाथों से विष दिया है। भक्ति-विह्वल उस देवी को छल कर, पचामृत के नाम से हलाहल देने वाला मै घोर नरक की ज्वाला मे जल रहा हूँ। बचाइये— राणा, बचाइये।

[चरणो मे गिर पड़ता है।

विक्रमा०— छि. पांडे, क्या बकते हो?

दयाराम— सत्य कहता हूँ, प्रभो।

विक्रमाजीत— तुम्हारा माथा फिर गया है। उठो, अपने को सँभालो। देखो, तुम कहाँ हो?

दयाराम— मै राणा विक्रमाजीत के सामने हू। मै एक भक्त-शिरोमणि नारी की हत्या का पापी हूँ।

विक्रमाजीत— (पाडे को पकड़ कर उठाता है) तुम जानते हो, तुम क्या बोल रहे हो?

दयाराम— सरकार, मै हत्यारा हू। मैने अपने स्वामी की इच्छा पूरी करने के लिये यह भीषण कृत्य किया है।

विक्रमा०— कोई है, इसे लेजा कर बन्द कर दो।

(एक शस्त्रधारी द्वार-रक्षक का प्रवेश।
दयाराम को पकड कर खीचता है।)

दयाराम— कृपा न दिखाइये, स्वामी! मुझे मृत्यु-दण्ड दीजिये। मृत्यु-शय्या से भी कठोर यह यन्त्रणा मुझे तिलतिल करके जला रही है।

विक्रमा०— ले जाओ।

सेनिक— जो आज्ञा।

(सेनिक उसे शीघ्रता से ले जाते हैं।)

विक्रमा— राजरानी मीरा को हलाहल! दुष्ट, क्रूर— दयाराम! एक फूल पर वज्र-प्रहार! ओफ इतनी नृशसता!— तो मेड़तणी इस ससार से नहीं हैं? कालकूट पीकर वे आ

अपने चिराराधित गोपालकृष्ण के पास पहुच गई हैं।—जाओ, देवी। जाओ। मान-मर्यादा पर मरने वाला मानव तुम्हारे मूल्य को क्या जाने? राणा के मन्दिर को छोड़ कर वह स्वर्ग-विहारिणी चिड़िया आज उड़ गई। यही तो मुझे अभीष्ट था। पाखण्डी, दुर्जन, पापी मै— मुझे नरक मे भी ठौर न मिलेगा।

[सिर पर हाथ रख कर बैठ जाता है।

[दृश्य परिवर्तन]

❀

दृश्य पाँचवाँ

[स्थान— चित्तोड़, मीरा का निवास। समय— प्रभात।
मीरा के चेहरे पर ज्योति जगमगा रही है। रत्ना और
कचन पास खड़ी उसके मुख की ओर देख रही हैं।]

रत्ना— विष का प्रभाव तो नही दिखाई देता।

कचन— बल्कि एक अलौकिक आभा मुख पर खिल रही है।

रत्ना— कितना दिव्य, भव्य और तेजस्वी रूप है।

कंचन— अचानक इतना परिवर्तन।

रत्ना— (मीरा को पुकारती है।) बाई जी!

मीरा— बोलो।

रत्ना— आप स्वस्थ तो हैं ?

मीरा— पूरी तरह । सुनती हूँ, पांडे पचामृत कह कर हलाहल दे गया था, पर हलाहल क्या इतना स्वादिष्ट हो सकता है ? और उसका असर कहाँ गया ?

कचन— आप तो और दिनों से भी भव्य हो गई है ।

रत्ना— आपका मुख-मण्डल आज दमक रहा है ।

कंचन— यह स्वर्गीय प्रकाश है ।

मीरा— यह उसी का तेज है ।

रत्ना— भगवान् की कृपा से हलाहल बाई जी को अमृत हो गया ।

मीरा— यदि ऐसा हो तो भगवान् की कृपा ही समझी जायगी ।

[नेपथ्य मे कोलाहल होता है । मीरा के निवास की ओर भीड़ उमडती आ रही है ।

रत्ना— (हाथ के इशारे से सबको रुकने का आदेश देती है ।)

भीड़— बाई जी कहाँ हैं ?

रत्ना— अपना मतलब कहो ।

भीड़ मे से एक व्यक्ति— हमने सुना है बाई जी को विष दिया गया है ।— वे इस समय कहाँ और कैसी हैं ?

रत्ना— विष का बाई जी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे सकुशल हैं। देखो वे सामने बैठी हैं— मूर्तिमती आभा सी।

(थोडा हटकर मीरा को दिखाती है। भीड मे हर्ष-ध्वनि और जय-जयकार होती है।)

रत्ना— आप लोग बेखटके लौट जाइये। स्वयं भगवान् वासुदेव बाई जी के सरक्षक हैं। उनका बाल बाका नही हो सकता।

(सब एक एक करके जाते हैं। सुखपाल ब्राह्मण का प्रवेश

मीरा— (सुखपाल को पहचान कर) ब्राह्मण देवता आगये ?

सुखपाल— यह लीजिये पत्र।

(जेब से पत्र निकाल कर मीरा के हाथ मे रखता है।)

मीरा— लाओ। (पत्र लेकर खोलती और बॉचती है।)

जाके प्रिय न राम-वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनिता भे सब मङ्गलकारी।
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।
अञ्जन कहा आंखि जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लों।

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद सोई मतो हमारो।

[मीरा पढ़ते-पढ़ते गाने लगती और मन्त्र-मुग्ध होने का नाट्य करती है।]

[दृश्य परिवर्तन]

❀

दृश्य नवाँ

[स्थान— वृन्दावन। समय— उषाकाल। मीरा कंचन और रत्ना के साथ पैदल जमुना-तट की ओर जा रही है। मार्ग आने जाने वालों से भरा है। एक युवती सुरीले कण्ठ से गाती चल रही है।]

गीत

मन वृन्दावन चाल बसो रे।
मान घटो, चाहे लोग हँसो रे।
मन वृन्दावन० ॥

मीरा— रत्ना, बहन! देखती हो। यही है वृन्दावन। गोपाल कृष्ण का लीलाधाम।

रत्ना— हृदय गद्गद हो रहा है, बाई जी।

कंचन— तभी वृन्दावन की इतनी महिमा है।

मीरा— वे रास-रसिक यहीं गोपियों के साथ रमे थे। अनन्तकाल बीत गया। युग अतीत के अंचल में लीन हो गये। तो भी भक्ति का वही उच्छ्वास वातावरण में बसा हुआ है। प्रेम की वही वीणा कालिंदी की लहरों मे बज रही है।

कचन— यह कौन-सा वृक्ष है? (वृक्ष की ओर इङ्गित करती है।)

मीरा-- यह नन्दलाल का प्यारा कदम्ब-वृक्ष है।

रत्ना— और यह। (दूसरे वृक्ष को दिखाती है)

मीरा— यह तमाल है।— और इधर देखो, यह रहा करील। (दिखाती है)

रत्ना— इन कदम्ब और तमाल की तो बड़ी महिमा गाई गई है।

मीरा— हॉ, इन्हीं की शीतल छाया में कभी राधावर वेणु बजा-बजा कर नाचते थे। ये करील-कुज भी कम महत्व के नहीं है। इनसे अनेक बार नन्दलाल ने हृदय खोल कर बातें की है।

कचन— (जल की धारा को सामने देख कर) लो, हम कालिंदी तट पर आ गये।

मीरा— यही है वे सूर्यसुता जमुना। ये यशोदानन्दन की समस्त क्रीड़ाओं की साक्षी है। इन्होंने उनकी वशी की प्रत्येक

ध्वनि सुनी है। इन्होंने रास-नृत्य को अपलक नयनों से देखा है।

[जमुना को तीनो अभिवादन करती हैं।]

रत्ना--- कैसा मनोहर दृश्य है ?

कचन — कैसा रम्य स्थान है !

मीरा--- थोड़ी सी देर मे कैसा हृदय हलका हो गया।

रत्ना--- कैसी सुन्दर लहरें उठ रही हैं।

कचन— जी होता है, इसी जमुना-तट पर घूमते-घूमते सदियाँ गुजार दे।

मीरा--- यहाँ का ऐसा ही प्रभाव है।— चलो, जी भर कर देख लें। कोई साध बाकी क्यों रक्खें।

[जमुना के किनारे किनारे देखती हुई आगे बढती हैं। चैतन्य सम्प्रदायी जीव गोस्वामी के आश्रम के सामने पहुचती हैं।

रत्ना— यह आश्रम बडा सुहावना है।

कचन— किसका स्थान है यह ?

मीरा— इस से पूछो।

(वाटिका मे काम करने वाले माली की ओर इङ्गित करती हैं।)

रत्ना— (जाकर पूछती हैं) अजी, यह किसका आश्रम है ?

माली— आप नहीं जानतीं, यह श्री जीव गोस्वामी जी का स्थान है। यहाँ वृन्दावन में तो उन्हें सभी जानते हैं।

मीरा— (पास जाकर) यह स्थान गुसाईं जी का है?

माली— (मीरा के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर) जी हाँ, आपका निवास वृन्दावन नहीं मालूम होता।

मीरा— नहीं। हम लोग बाहर से आये हैं। हम गुसाईं जी के दर्शन करना चाहती हैं।

माली— दर्शन!

मीरा— हाँ, क्यों?

माली— गुसाईं जी तो स्त्रियों से भेंट नहीं करते।

मीरा— स्त्रियों से नहीं मिलते?

माली— नहीं। उनका ऐसा ही नियम है।

मीरा— परन्तु तुम जाकर कहो तो।

माली— क्या कहूँ?

मीरा— कहना मीरा दासी आपके दर्शन को द्वार पर खड़ी है।

माली— मैं चला जाता हूँ, परन्तु—

मीरा— जाओ तो सही।

[माली जाकर लौट आता है]

माली— गुसाईं जी ने वही बात कही है।

मीरा — अच्छा, एक बार फिर जाओ। मै जो कहती हूँ वह गुसांई जी की सेवा में निवेदन कर दो। फिर मै लौट जाऊँगी।

माली— बोलिये।

मीरा— गुसाईं जी से कहना, दासी मीरा कहती है— मै तो यही समझती थी कि वृन्दावन मे श्रीकृष्ण ही एक पुरुष बसते है और सभी गोपियां हैं, पर आज मालूम हुआ कि यहाँ भी पुरुषत्व का दावा करने वाले मौजूद है।

माली— ऐसा कहूँ ? (मीरा के मुख की ओर देखता है।)

मीरा— हाँ, ठीक इसी तरह। तुम मेरी ओर से कहोगे। इसलिये डरने की आवश्यकता नहीं।

[*माली भीतर जाता है। जीव गोस्वामी नगे पाँव दौडे हुए आते हैं।*]

जीव गोस्वामी— आओ, आओ भक्त-शिरोमणि मीरा बाई आओ। तुमने मेरी आँखें खोल दीं।

मीरा— दासी मीरा गुसाईं जी के चरणों मे नमस्कार करती है।

जीव गोस्वामी— मै कैसे भ्रम मे था ? मै अब तक यह न समझ सका कि भगवान् की शरण मे स्त्री-पुरुष समान है।

मीरा— गुसाईं जी, इस दासी के विनोद का बुरा न मानना।

जीव गोस्वामी— ऐसा न कहो, बाई जी। आओ, आश्रम मे पधारो। आज सच्चे भगवद्-भक्तों की चरण-धूलि से यह स्थान पवित्र होगा।

मीरा— मै किस योग्य हूं, गुसांई जी। मै तो भक्तजनों की चरण-सेविका हूँ।

(गोस्वामी जी के पीछे पीछे आश्रम मे प्रवेश करती है।)

जीव गोस्वामी— मेरा हृदय आज आलोकित हो गया। अज्ञान का आवरण हट गया।

(सब भीतर जाकर आसनों पर विराजते हैं।)

मीरा— बड़े दिनों की साध आज पूरी हुई। गोपाल की लीला-भूमि के दर्शन करके आँखें आज तृप्त हो गई।

जीव गोस्वामी— बाई जी, आपकी वाणी ने भक्तों के कण्ठ मे माधुर्य घोल दिया है। घर-घर आपके पद गाये जाते है, परन्तु मेरी एक इच्छा है।

मीरा— आज्ञा कीजिये।

जीव गोस्वामी— आपके मुख से ही एक पद सुनूँ।

मीरा—(गाती है।)

मने चाकर राखो जी, हाँ मने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ नित उठ दर्शन पासूँ।
वृन्दावन की कुञ्ज-गलिन में तेरी लीला गासूँ।
हरे हरे नित वन्न बनाऊँ बिच बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ पहर कुसुम्भी सारी
मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन देहैं प्रेम नदी के तीरा।

(सारी मण्डली भावावेश से झूमने लगती है।)

[दृश्य परिवर्तन]

❀

दृश्य दसवाँ

[**स्थान**— द्वारिकापुरी, रणछोड़ जी के मन्दिर का प्राङ्गण।

समय— सायङ्काल।

[दयाराम ब्राह्मण कुछ अन्य ब्राह्मणों के साथ आता है।

दयाराम— यहीं, बाई जी से भेंट होगी।

एक ब्राह्मण— उन्हें हमारे आने का पता है?

दयाराम— नहीं।

दूसरा ब्राह्मण— वे लौट चलेंगी, इतने दिनों बाद?

दयाराम— हम अनुरोध करेंगे।

तीसरा ब्राह्मण— हम मेवाड़ की दुर्दशा उन्हें सुनायेंगे।

दयाराम— हाँ, हम कहेंगे। आपने मेवाड़ की भूमि को जब से छोड़ दिया, तब से उस पर दैवी और मानवी विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा है। वृष्टि नहीं होती है। महामारी फैल रही है। युद्ध की घटा छाई रहती है। अमीर-गरीब, पशु-पक्षी सब त्राहि-त्राहि करते हैं। एक बार, केवल एक बार आपके चरणों की रज पड़ने से ही भगवान की दया-दृष्टि होगी।

सब— हाँ-हाँ, हम यही कहेंगे।

[सब मूर्ति के सामने पहुँचते हैं। भीतर मूर्ति के चरणों में बैठी मीरा गाती हुई दिखाई पड़ती है।

मीरा— (गान) भज मन चरन कमल अविनाशी।

जेतई दीसे धरण गगन बिच, तेतई सब उठ जासी।
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी।
भज मन० ॥

(गीत समाप्त होने पर दयाराम सामने द्वार के पास जाता है।

दयाराम— बाई जी, मुझे पहचाना?

मीरा— (देखकर) दयाराम पांडे, भला क्यों न पहचानूँगी।

दयाराम— बाई जी, ग्लानि से मेरा रोम-रोम जला जाता है।

मीरा— उसे भूल जाओ, पांडे जी।

[रत्ना का प्रवेश, दयाराम पाडे को ब्राह्मणों के साथ देख कर।]

रत्ना— पाडे, तुम्हारे हृदय का कलुष अभी तक नहीं धुला? हलाहल घोल कर भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ? अब क्या सौगात लाये हो?

मीरा— कैसी बाते कर रही हो, रत्ना! देखती नही हो अनुताप के जल से निष्कलुष हुआ पाडे जी का मुख।

दयाराम— धिक्कारो रत्नावली, मुझ पापी को धिक्कारो। अनुताप और ग्लानि से क्या वह पाप प्रक्षालित हो सकेगा? उसके लिये तो अभिशापो की वर्षा भी थोड़ी है।

रत्ना— तो क्या सयमुच बाई जी के पास क्षमा-याचना के लिये आये हो?

मीरा— क्षमा-याचना की आवश्यकता नहीं, पांडे जी। मै तो उसी समय सबको क्षमा कर चुकी हूं।

दयाराम— सो मै जानता हू। मैं आपको लेने के लिये आया हूँ। मेवाड़ को आज आपके चरण-रज की आवश्यकता है। उसने आपको खोकर अपनी सुख-शान्ति को खो दिया है।

मीरा— मुझे क्षमा करो। मुझे अब संसार की ओर मत घसीटो। मेरी सद्भावनाएँ तुम अपने साथ ले जाओ। भगवान् की कृपा से मेवाड़ फिर ज्यों का त्यों होगा।

दयाराम— ऐसा न करो, बाई जी। मैं आप से अनुरोध करता हूँ।

मीरा— यह नहीं हो सकता, पांडे जी। मेरे स्वामी, मेरे सर्वेश्वर, गोविंद की आज्ञा नहीं है कि मैं एक क्षण के लिये भी यह स्थान छोड़ूं।

दयाराम— तो हम भी यहीं रहेंगे। बिना आपको लिये चित्तौड़ जाना असम्भव है।

(सब बैठते हैं)

मीरा— भगवन्, आपकी क्या इच्छा है? यह पांडे जी का अनुरोध—

[कहती हुई द्वार के अन्दर मूर्ति के पास जाती है और द्वार बन्द कर लेती है।

दयाराम— बाई जी, अवश्य चलेंगी।

रत्ना— पांडे जी, अधिक अनुरोध न करो। बाई जी को कष्ट होता है।

दयाराम— कष्ट नहीं होगा, रत्नावली।

(सब प्रतीक्षा करते हैं परन्तु मीरा नहीं निकलती है। आखिर रत्ना द्वार खोलती है।)

रत्ना--- अरे। बाई जी कहाँ गई ? यहाँ तो नहीं दीखतीं

दयाराम--- ऐं, बाई जी नहीं हैं। आश्चर्य।

(देखता है)

एक ब्राह्मण— यह वस्त्र कैसा है ? यही तो पहने थीं।

[सब साश्चर्य मूर्ति के ऊपर मीरा के वस्त्र को देखते हैं।

रत्ना— बाई जी मूर्ति मे लोप हो गईं। अद्‌भुत !

दयाराम— वे जिसकी थी उसी मे समा गई।

सब— भगवान् ने उन्हें अपने पास बुला लिया।

[मूर्ति मे से शब्द होता है]

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

[सब उसी को दोहराते हैं]

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

परदा